भारती

भाग 3

कक्षा 8 के लिए हिंदी की पाठ्यपुस्तक

संपादक
प्रमोदकुमार दुबे

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
जनवरी 2004 माघ 1925

ISBN 81-7450-257-2

PD 600T NSY

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस श्री अरविंद मार्ग **नई दिल्ली 110 016**	108, 100 फीट रोड हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे बनाशंकरी III इस्टेज **बैंगलूर 560 085**	नवजीवन ट्रस्ट भवन डाकघर नवजीवन **अहमदाबाद 380 014**	सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी **कोलकाता 700 114**	सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स मालीगांव **गुवाहाटी 781021**

प्रकाशन सहयोग

संपादन : नरेश यादव

उत्पादन : विकास ब. मेश्राम

आवरण

अमित श्रीवास्तव

चित्र

भूषण शालिग्राम

रु. 30.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश ऑफसेट प्रिंटिंग प्रेस, सी-450, डी.एस.आई.डी.सी., नरेला इंडस्ट्रियल पार्क, नरेला, दिल्ली 110 040 द्वारा मुद्रित।

आमुख

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार परिषद् में नए पाठ्यक्रम एवं तदनुरूप नई पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया गया था। किंतु शिक्षा सतत विकासशील प्रक्रिया है। इस कारण बदलती हुई परिस्थितियों, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले अद्यतन विकास तथा नवीन शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नए पाठ्यक्रम तथा उसके अनुसार नई पाठ्यपुस्तकों का निर्माण अपेक्षित हो जाता है। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी समय-समय पर पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों में आवश्यकतानुसार संशोधन एवं परिवर्तन पर बल दिया गया है। इस दृष्टि से परिषद् ने सन् 2000 में *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा* का निर्माण किया। इसके आधार पर विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रमों में संशोधन एवं परिवर्तन किए गए। इस नवनिर्मित पाठ्यक्रम के अनुरूप परिषद् ने नवीन पाठ्यपुस्तकों के प्रणयन का कार्य हाथ में लिया है। इसी क्रम में कक्षा आठ के लिए हिंदी की यह नवीन पाठ्यपुस्तक तैयार की गई है।

प्रस्तुत पुस्तक की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(क) पाठ्यसामग्री का चुनाव विद्यार्थियों की बौद्धिक क्षमता, रुचि तथा उनकी भाषिक दक्षता के विकास को दृष्टि में रखकर किया गया है।

साथ ही पाठों के चयन में जीवन के विविध संदर्भों, नागरिक के मूल कर्तव्यों, केंद्रिक शिक्षाक्रम के घटकों तथा मूल्यपरक विषय के समावेश पर बल दिया गया है।

(ख) विविधता और रोचकता की दृष्टि से पुस्तक में गद्य और पद्य दोनों प्रकार के पाठ रखे गए हैं। गद्य के अंतर्गत वर्णनात्मक तथा विचारात्मक निबंध, रूपक-कथा, कहानी, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा-वृत्तांत, हास्य-व्यंग्य आदि गद्य की विभिन्न विधाओं के पाठ सम्मिलित किए गए हैं। पद्य के अंतर्गत सत्य, शिव और सुंदर को पाने की लालसा, जीवन के यथार्थ के प्रति जागरूकता, नीति, त्याग, इच्छा शक्ति की दृढ़ता, कर्मशील भक्ति, आत्मनिर्भरता, प्रकृति-सौंदर्य और देश के प्रति कर्तव्यनिष्ठा से संबंधित कविताएँ दी गई हैं।

(ग) पाठ में आए हुए तथ्यों, भावों, विचारों, जीवनमूल्यों तथा भाषा-शैलीगत विशेषताओं को पूरी तरह उभारने की दृष्टि से प्रत्येक पाठ के अंत में विस्तृत 'प्रश्न-अभ्यास' दिए गए हैं। इनमें बोध और विचार के अंतर्गत दिए गए प्रश्न विद्यार्थियों में पठित वस्तुओं को समझने और उस पर विचार करने की योग्यता विकसित करने में सहायक होंगे। 'भाषा-अध्ययन' के अंतर्गत दिए गए प्रश्न और अभ्यास से विद्यार्थियों को भाषिक तत्त्वों और संरचनाओं को समझने तथा भाषा का प्रभावी प्रयोग करने में सहायता मिलेगी। साथ ही उच्चारण, वर्तनी तथा वाक्य-विन्यास संबंधी अशुद्धियाँ भी दूर हो सकेंगी। कविता के पाठों से संबंधित प्रश्न और अभ्यास में बोध और सराहना तथा शिल्पगत विशेषताओं को भी उभारने का प्रयास किया गया है।

नए पाठ्यक्रम में मौखिक भाषा की दक्षता पर विशेष बल दिया गया है। अतः प्रश्न-अभ्यास में मौखिक प्रश्नों को जोड़ा गया है, जिससे विद्यार्थियों में शुद्ध उच्चारण और शुद्ध भाषा प्रयोग की दक्षता विकसित हो सके। इससे मौखिक भावाभिव्यक्ति की योग्यता में भी वृद्धि होगी।

'योग्यता-विस्तार' शीर्षक के अंतर्गत दिए गए सुझावों और निर्देशों से विद्यार्थियों को पाठ्य विषयों से संबंधित अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त साहित्य पढ़ने की प्रेरणा प्राप्त होगी और उनकी पठन-रुचि का विस्तार होगा। साथ ही, प्रस्तावित क्रियाकलापों से उनके भाषा कौशलों (सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना) का संवर्धन भी हो सकेगा।

अंत में 'शब्दार्थ और टिप्पणी' के अंतर्गत पाठ में आए कठिन शब्दों के प्रसंगगत अर्थ बताए गए हैं और उन प्रसंगों, व्यक्तियों, अंतर्कथाओं आदि पर टिप्पणियाँ भी दी गई हैं जो पाठ के अर्थबोध की दृष्टि से अपेक्षित हैं।

(घ) पुस्तक के अंत में 'शब्द-कोश' और उसे देखने की विधि दी गई है, जिससे विद्यार्थियों में हिंदी का शब्द-कोश देखने की कुशलता विकसित हो सके। इस शब्द-कोश में 'शब्दार्थ' के अंतर्गत लिए गए कठिन और अपरिचित शब्दों को अकारादि क्रम में रखा गया है। अर्थ देते समय शब्द के प्रसंगगत अर्थ को महत्त्व दिया गया है। आवश्यक स्थानों पर अनेक समानार्थी शब्द भी दे दिए गए हैं। इससे विद्यार्थी मिलते-जुलते अर्थ वाले शब्दों में अंतर करना और उनमें से उपयुक्त शब्द का चुनाव करना सीख सकेंगे। कोश के माध्यम से शब्द-रचना की प्रक्रिया को समझाने का प्रयत्न किया गया है, ताकि विद्यार्थी इसका उपयोग शुद्ध वर्तनी और रचना आदि के अभ्यास हेतु कर सकें।

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में हमें अनेक शिक्षाविदों, अनुभवी अध्यापकों तथा भाषाशास्त्रियों का सहयोग मिला है, इसके लिए मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। जिन कवियों और लेखकों ने अपनी रचनाएँ इस पुस्तक में सम्मिलित करने की अनुमति दी है, उनके प्रति हम विशेष आभार प्रकट करते हैं।

इस पुस्तक के विषय में अध्यापकों और विद्यार्थियों की प्रतिक्रिया और सुझाव प्राप्त कर हमें प्रसन्नता होगी।

जगमोहन सिंह राजपूत

नई दिल्ली — *निदेशक*

सितंबर 2003 — राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

विद्यार्थियों से

भारती भाग 3 आपके हाथ में है। यह कक्षा आठ के लिए मातृभाषा हिंदी की पाठ्यपुस्तक है। इस पुस्तक में ऐसी कविताएँ, कहानियाँ, रूपक-कथा, जीवनी, निबंध, संस्मरण आदि रखे गए हैं जो आपको रुचिकर लगेंगे। पाठ्यपुस्तक में संकलित पाठों को पढ़ने में आपको आनंद आएगा और आपकी भाषा योग्यता में वृद्धि होगी।

इस पुस्तक के पठन-पाठन में आपके अध्यापक तो आपकी सहायता करेंगे ही, पर इसमें ऐसे अनेक अंश हैं जिन्हें आप अपने-आप ही पढ़कर अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस दृष्टि से आपकी सहायता के लिए हम कुछ बातें नीचे दे रहे हैं, जिन पर ध्यान देकर आप इस पुस्तक से अधिक-से-अधिक लाभ उठा सकेंगे –

(क) भाषा का मूल रूप मौखिक होता है। जीवन के हर क्षेत्र में बोलने की आवश्यकता पड़ती है और हम अपने अधिकतर कार्य मौखिक अभिव्यक्ति द्वारा ही पूर्ण करते हैं। बोलना एक कौशल है और उचित अभ्यास से ही इसका विकास होता है। अतः इस पुस्तक के पाठों को घर पर बोलकर पढ़ने का अभ्यास कीजिए। इससे न केवल आपके बोलने का ढंग सुधरेगा अपितु आपको पाठों में निहित विचारों को समझने में

सहायता मिलेगी और आपकी पठन योग्यता भी बढ़ेगी। बोलने के कौशल के विकास के लिए अपने उच्चारण पर ध्यान दीजिए। आपका उच्चारण न केवल शुद्ध होना चाहिए बल्कि स्पष्ट, सुश्रव्य, भावानुकूल भी होना चाहिए।

(ख) आप पाठों को अच्छे ढंग से बोलकर पढ़ने के साथ-साथ उनका मौन पठन भी कीजिए। मौन पठन में न तो आपके मुँह से आवाज़ निकलनी चाहिए और न ही होंठ हिलने चाहिए। मौन पठन करने से आप अधिक गति से पढ़ सकेंगे और पाठ के विचारों को भी जल्दी और अच्छी तरह समझ सकेंगे।

(ग) भाषा शब्दों से बनती है। आप अब तक हिंदी के हज़ारों शब्द जान गए हैं। इस पुस्तक में कुछ नए शब्द आए हैं, जिनका अर्थ आप शायद नहीं जानते होंगे। आपकी सुविधा के लिए पुस्तक के प्रत्येक पाठ के अंत में 'शब्दार्थ और टिप्पणी' दी गई है। साथ ही पुस्तक के अंत में 'शब्द-कोश' भी दिया गया है, जिसमें नए शब्दों के अर्थ दिए गए हैं। अध्यापक आपको इस शब्द-कोश का उपयोग करना सिखाएँगे। इस कोश से अधिक-से-अधिक लाभ उठाइए। आठवीं कक्षा उत्तीर्ण करते-करते यदि आप इस शब्द-कोश में दिए हर शब्द का अर्थ अच्छी तरह जान लेंगे और उन शब्दों का अपनी भाषा में प्रयोग कर सकेंगे तो आपकी भाषा की योग्यता निश्चित ही बढ़ जाएगी और आपको आगे की कक्षाओं में पढ़ने में बड़ी सुगमता होगी।

(घ) भाषा यद्यपि शब्दों से बनती है पर शब्दों पर ही समाप्त नहीं होती। शब्दों का अर्थ जान लेना ही भाषा-ज्ञान नहीं है। शब्दों के परस्पर संबंध से वाक्य बनते हैं और वाक्यों के परस्पर संबंध से अनुच्छेद। आपको मालूम होना चाहिए कि कौन शब्द या शब्दों का समूह वाक्य में काम कर रहा है। इसके लिए वाक्य में प्रयुक्त पद, पदबंधों और उपवाक्यों को समझना ज़रूरी है। हमने इसके लिए गद्य पाठों के अंत में 'भाषा-अध्ययन' शीर्षक से कुछ अभ्यास दिए हैं। उन अभ्यासों को भली-भाँति समझकर पूरा करने से आपकी भाषा सुधरेगी और आप अपनी बात को अधिक प्रभावशाली ढंग से कह सकेंगे और लिख सकेंगे।

(ङ) लेखक या कवि शब्दों के द्वारा कुछ कहना चाहता है। उसके विचारों और भावों को समझने की कोशिश कीजिए। इसके लिए शब्दों में निहित विचारों तक जाने की आवश्यकता है। पढ़ते हुए सोचने का काम जारी रखिए। बिना समझे रटने की कोशिश मत कीजिए। लेखक या कवि की बात को भली प्रकार समझकर उस पर अपने ढंग से विचार कीजिए।

(च) प्रत्येक पाठ के अंत में 'योग्यता-विस्तार' शीर्षक से कुछ अभ्यास दिए गए हैं। इस प्रकार के अभ्यास पाठों से मिली जानकारी को और समृद्ध तथा विस्तृत करेंगे। साथ ही ये आपको अतिरिक्त जानकारी प्राप्त करने के लिए भी प्रेरित करेंगे। इन अभ्यासों में कई जगह आपसे पाठ के विषय से संबंधित कोई पुस्तक या उसका कोई अंश-विशेष पढ़ने के लिए कहा गया है। भाषा-योग्यता बढ़ाने का सबसे अच्छा मंत्र है पढ़ना,

पढ़ना और पढ़ना। इसलिए आप पढ़ें, खूब पढ़ें। आपके विद्यालय में पुस्तकालय तो होगा ही। यदि किसी विषय पर कोई पुस्तक विद्यालय के पुस्तकालय में नहीं है या किसी कारण से वह आपको मिल नहीं सकती तो उसके लिए अपने अध्यापक, पुस्तकालयाध्यक्ष या प्रधानाचार्य से प्रार्थना कीजिए। वे अवश्य ही आपकी माँग पूरी करने का यत्न करेंगे। कुछ अभ्यासों में लेखन-कार्य पर बल दिया गया है। इनके माध्यम से आप अपनी लिखित अभिव्यक्ति को विकसित कर सकेंगे।

(छ) भाषा किसी एक व्यक्ति की संपत्ति नहीं है, वह समाज की उपज है। भाषा पढ़ते समय हमारे अंदर अच्छे सामाजिक गुणों का विकास होना चाहिए। इन गुणों में सबसे प्रमुख है – सहयोग की भावना। इसलिए सबके साथ मिल-जुलकर सीखिए। आप अकेले जितना सीखेंगे उससे कहीं अधिक औरों के साथ काम करके सीखेंगे। किसी पुस्तक में अच्छी बात पढ़ने पर उसके बारे में अपने सहपाठियों से चर्चा करना न भूलें। इसी प्रकार अपनी कठिनाइयाँ बिना झिझक के औरों के सामने रखिए और दूसरों के अनुभवों से सीखिए।

भाषा का मुख्य उद्देश्य ज्ञान और आनंद की प्राप्ति है। हमें विश्वास है कि आप इस पुस्तक के सभी पाठों को लगन से पढ़ेंगे ताकि उनके अध्ययन से आपको ज्ञान भी मिले और उल्लास भी।

पाठ्यपुस्तक समीक्षा कार्यगोष्ठी के सदस्य

निरंजन कुमार सिंह
रीडर (अवकाशप्राप्त)
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

आनंद प्रकाश व्यास
रीडर (अवकाशप्राप्त)
शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मणिक गोविंद चतुर्वेदी
प्रोफ़ेसर (अवकाशप्राप्त)
केंद्रीय हिंदी संस्थान
कैलाश कालोनी, नई दिल्ली

कृष्ण कुमार गोस्वामी
प्रोफ़ेसर (अवकाशप्राप्त)
कैलाश कालोनी, नई दिल्ली

अनिरुद्ध राय
प्रोफ़ेसर (अवकाशप्राप्त)
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

मानसिंह वर्मा
रीडर एवं अध्यक्ष (अवकाशप्राप्त)
हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ, उत्तर प्रदेश

कमल कुमार
रीडर, हिंदी विभाग
जीसस एंड मैरी महाविद्यालय, नई दिल्ली

नीरा नारंग
वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सुरेश पंत
प्रवक्ता (अवकाशप्राप्त)
राजकीय उच्चतर माध्यमिक बाल विद्यालय
जनकपुरी, नई दिल्ली

कुसुमलता अग्रवाल
अध्यापिका, सर्वोदय बाल विद्यालय
रमेश नगर, नई दिल्ली

रमेश तिवारी
प्रवक्ता, कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज़
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

अशोक शुक्ल
अध्यापक, सर्वोदय विद्यालय
पीतम पुरा, नई दिल्ली

ब्रजेंद्र त्रिपाठी
कार्यक्रम अधिकारी
साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

देवशंकर 'नवीन'
उपसंपादक
नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली

अनिता भंडूला
हिंदी अध्यापिका
वेद व्यास पब्लिक स्कूल
डी-ब्लाक, विकासपुरी
नई दिल्ली

ऋतु
हिंदी अध्यापिका
कमल पब्लिक सीनियर सेकंड्री स्कूल
नई दिल्ली

एन.सी.ई.आर.टी. संकाय
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग

स्नेहलता प्रसाद
रीडर
प्रमोदकुमार दुबे (समन्वयक)
प्रवक्ता

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

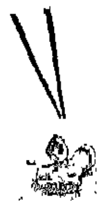
पाठ-सूची

1. जग जीवन में जो चिर महान

(प्रस्तुत कविता में कवि ने जीवन में 'चिर महान' (सत्य, शिव और सुंदर) को पाने की प्रार्थना की है, जिससे मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद-भाव मिट सके और उनमें परस्पर प्रेम भाव पैदा हो सके। इससे वह संशय, भय तथा अंध-आस्था से मुक्ति पा सकेगा, साथ ही मनुष्यता की रक्षा करते हुए अपने जीवन में नई सुबह और नए उल्लास का अनुभव कर सकेगा।)

जग जीवन में जो चिर महान,
सौंदर्य पूर्ण औ सत्य प्राण,
मैं उसका प्रेमी बनूँ नाथ!
जिससे मानव हित हो समान!

जिससे जीवन में मिले शक्ति,
छूटें भय-संशय, अंध-भक्ति,
मैं वह प्रकाश बन सकूँ, नाथ!
मिल जावें जिसमें अखिल व्यक्ति!



दिशि-दिशि में प्रेम-प्रभा-प्रसार,
हर भेद भाव का अंधकार,
मैं खोल सकूँ चिर मुँदे, नाथ!
मानव के उर के स्वर्ग-द्वार!

पाकर, प्रभु! तुमसे अमर दान
करने मानव का परित्राण,
ला सकूँ विश्व में एक बार
फिर से नव जीवन का विहान।

– सुमित्रानंदन पंत

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

(क) मौखिक

1. कवि ने जीवन में 'चिर महान' किसे कहा है –
   (क) जो आकाश की तरह विशाल और सागर की तरह गहरा हो
   (ख) जो सत्य और सुंदर हो
   (ग) जो परोपकारी और करुणामय हो
   (घ) जो संपूर्ण वसुधा को एक कुटुंब मानता हो।
2. इस कविता का मुख्य भाव है –
   (क) मानव-कल्याण और एकता
   (ख) मानव-संगठन और सुरक्षा
   (ग) अमर दान की प्राप्ति
   (घ) विश्व परिवार की भावना।

(ख) लिखित

1. कवि ने प्रभु से क्या-क्या माँगा है?
2. वह 'चिर महान' को क्यों पाना चाहता है?
3. कवि किस प्रकाश को पाने का इच्छुक है?
4. मनुष्य के हृदय के स्वर्ग का द्वार चिरकाल से क्यों बंद है? कवि ने उसे खोलने का कौन-सा रास्ता सुझाया है?
5. नए जीवन में नया सवेरा कवि क्यों लाना चाहता है?

योग्यता-विस्तार

'सभी मनुष्य एक हैं' विषय पर एक अनुच्छेद लिखिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

चिर महान	–	सदा महान रहने वाला (सत्य, शिव और सुंदर)
सत्य प्राण	–	जिसके प्राणों में सत्य भरा हो, सत्य स्वरूप
संशय	–	संदेह
अंध-भक्ति	–	तर्कहीन आस्था
मिल जावें जिसमें अखिल व्यक्ति	–	सभी मनुष्यों में परस्पर मेल हो
दिशि-विशि	–	दिशा-दिशा में
प्रेम प्रभा	–	प्रेम के प्रकाश को फैलाकर
चिर मुँदे	–	बहुत दिनों से बंद
मानव के उर के स्वर्ग-द्वार	–	मनुष्य के हृदय में स्थित स्वर्ग का द्वार
मानव का परित्राण	–	मनुष्यता की रक्षा
नव विहान	–	नया सवेरा

2. मुक्ति

(प्रस्तुत कहानी लेखक के जीवन में घटी दो घटनाओं से जुड़ी है। पहली घटना में हम देखते हैं कि बिन बुलाए मेहमान की तरह घोंसला बनाए रखने के लिए घुस आई चिड़िया को लेखक और उसके परिवार की खीझ और विरोध किस प्रकार उसके प्रति आत्मीयता में बदल जाता है। दूसरी घटना में लेखक के घर के सामने के घर में अनजाने में ही बंद हुई चिड़िया की व्यथा और बेबसी के प्रति लेखक और उसके परिवार की संवेदना का मार्मिक चित्रण हुआ है। बंद चिड़िया की मुक्ति लेखक को अपनी मुक्ति लगती है।)

लगभग अक्तूबर-नवंबर से यह सिलसिला शुरू हो जाता है। वह अजनबी आत्मीय बन आती है और घर के कुछ जाने-पहचाने, अपने प्रिय हिस्सों में नए सिरे से पड़ताल करने लगती है। दीवार पर टँगी किसी पेंटिंग के पीछे, अलमारी के ऊपर, बुकशेल्फ़ के अंदर अथवा बाथरूम या ड्रेसिंग टेबल की आजू-बाजू वह अपनी जरूरत और पसंद की जगह खोजने लगती है। बार-बार अंदर आएगी, फिर कुछ फुसफुसा कर तेज़ी के साथ बाहर जाएगी और दूसरे ही क्षण, उतनी ही तेज़ी से अंदर आ, अपनी चुनिंदा जगहों पर बैठ जाएगी। आश्वस्त हो, साथ में लाया हुआ सामान उन जगहों पर रख देगी और तब सारा घर चीं····चीं····चीं···· के शोर में डूब जाएगा। तभी महसूस होता है कि चिड़िया के गृह-प्रवेश का मौसम शुरू हो गया है। बड़े और छोटे सभी अपनी-अपनी तरह से इस अजनबी मेहमान को बाहर धकेलने की कोशिश करते हैं। घर के बड़े शी····शी कर

उसे डराते हैं, बच्चे यहाँ-वहाँ उसका पीछा करते हैं और घर की औरतें बार-बार उसका सामान उठा, खिड़की से बाहर फेंक देती हैं और कुछ क्षण के लिए निश्चिंत हो, फिर से अपने कामकाज में जुट जाती हैं। लेकिन उसका लौटना निश्चित है। वह फिर आती है, फिर-फिर आती है, और अपना सामान चोंच में दाबे तिनके यहाँ-वहाँ, अपनी पसंद की जगहों पर रख देती है और पूरे घर को अपनी चिचियाहट से भर देती है।

अब तक घर के बुजुर्गों का जोश समाप्त हो चुका होता है। बच्चों का उत्साह भी क्षीण होने लगता है, जैसे इस खेल से उनका मन भर गया हो। औरतें भी उसकी बच्चों जैसी ज़िद के आगे हार जाती हैं और उसके आवागमन को देख मुसकरा कर रह जाती हैं। चिड़िया अपने तिनकों, अपनी चीं....चीं....और अपनी पूरी चपलता के साथ घर में घुस आती है और दीवार पर टँगी तस्वीर के पीछे, अलमारी के ऊपर, बाथरूम में और ड्रेसिंग टेबल के आजू-बाजू अपना घर बनाना शुरू कर देती है। घर में यहाँ-वहाँ तिनके बिखेरना शुरू हो जाता है और चिड़िया एक कमरे से दूसरे कमरे की ओर, रसोईघर से स्नानगृह तक, समूचे घर में मालकिन की तरह उड़ती रहती है, फुदकती रहती है।

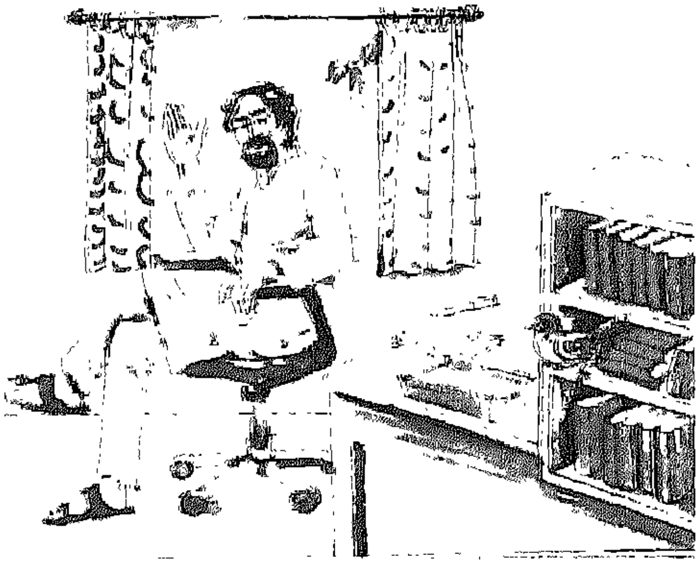
* * *

अब तक चिड़िया घर का हिस्सा बन चुकी थी। मौसम की शुरुआत में मैंने ज़रूर विरोध किया था, थोड़ा प्रतिरोध भी किया था। दो-तीन बार बुकशेल्फ़ से तिनकों का ढेर उठा बाहर फेंक दिया था, एकाध बार चिड़िया को खदेड़ने के नाम पर आध-पौन घंटा भाग-दौड़ भी की थी। घर के सारे दरवाज़े-खिड़कियाँ बंद कर दिए थे। यहाँ तक कि उजालदान पर भी

कपड़ा बाँध दिया था, परंतु कुछ ही देर बाद वही चीं···चीं···चीं···का शोर करती हुई चिड़िया बुकशेल्फ़ पर बैठी मुझे ताक रही थी।

– चीं···चीं···चीं···चीं···मैं यहाँ हूँ···मैं यहाँ हूँ···।

हथियार डालने के अंदाज़ में मैंने उसकी ओर देखा। बुकशेल्फ़ जो अभी-अभी मैं साफ़ कर चुका था, वह वहीं बैठी थी और पास में एक सूखा हुआ तिनका पड़ा था।



-- चीं···चीं···चीं···चीं···मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा – तुम क्यों नाराज़ हो!

उसकी बेचैनी, सरलता और आत्मीयता को देख मैं करुणा और दुलार से भर गया। चेहरे पर का तनाव धुल गया और उसकी जगह चिड़िया जैसी ही मुसकान तैरने लगी। मैंने उठकर फिर से खिड़कियाँ खोल दीं, पर्दे खींच कर एक ओर कर दिए और प्यार से पूछा, "अब तो तू खुश है न!"

– चीं····चीं····चीं····चीं अब तुम्हारी हमारी दोस्ती! आखिर यह मेरा भी तो घर है।

खुली खिड़की से एकदम वह बाहर जाती है, फिर तेज़ी से आती है। कभी रस्सी का टुकड़ा, कभी पत्ते, छोटे-बड़े तिनके, रूई के फाए, रद्दी कपड़े की चिंदिया और न जाने क्या-क्या वह ला-ला कर, उसी जगह जमाने लगती है। अब उसे किसी का डर नहीं था।

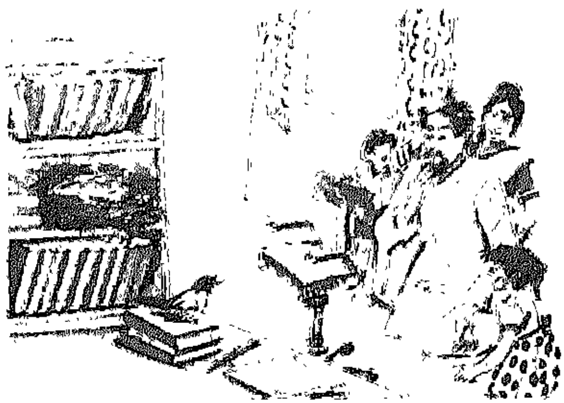
पत्नी ने मुसकरा कर कहा था, "मैंने कहा न था! इससे पार पाना कठिन है। बड़ी ज़िद्दी है। एक बार जो जगह पसंद कर ली, बस घर वहीं बनाएगी। आप बेकार परेशान हो रहे थे, और फिर है भी कितनी प्यारी!"

शाम तक चिड़िया का घर बन चुका था। मैं लौटकर आया तो देखा कि वह अपने घर में बैठी है। कभी बाहर, कभी अंदर, फिर अपनी चोंच से तिनकों को ठीक करने लगती है।

"तो चिड़िया रानी, तुमने घर बना ही लिया।" मैं चिड़िया का घर देख थोड़ा ज़्यादा ही प्रसन्न हो उठता हूँ।

– चीं····चीं····चीं····चीं कैसा है मेरा घर!

वह घर के बाहर, किताब पर बैठी हुई थी। मैंने गौर से देखा तो पुस्तकों पर चिड़िया की बीट के निशान थे। मैंने उसे फटकारना चाहा, थोड़ा नकली गुस्सा भी किया।



– यह क्या, तुमने तो सब जगह बीट करके पुस्तकें खराब कर दीं न! अब?

– चीं····चीं····चीं····चीं····! मेरा भी तो घर है। यह सब तो होगा। तुम गुस्सा क्यों होते हो?

तभी पीछे से एक ज़ोरदार ठहाका सुनाई दिया। पलट कर देखा तो पाया कि पत्नी और नन्हीं पोती चिंकी दोनों खड़ी-खड़ी हँस रही हैं। उन्हें लगा होगा कि मैं अपने आपसे बातें कर रहा हूँ और वह भी सनकियों जैसी अर्थहीन बातें।

– बाबाजी, आप किससे बातें कर रहे थे? पत्नी की हँसी थम चुकी थी, पर हँसी की जगह अब उनके चेहरे पर शैतानी भरी मुसकराहट थी। उनकी आँखें जैसे पूछ रही थीं कि सच में सठिया गए हो क्या? यों किससे सवाल-जवाब कर रहे थे? चिड़िया से बातें कर रहे थे!

चिंकी को गोदी में उठा मैं चिड़िया की ओर इशारा करता हूँ। चिंकी चिड़िया को देख खिल उठती है।

इसने क्या किया बाबाजी?

बेटा, यह बहुत शैतान है। मैंने इसे घोंसला बनाने की जगह दी, मगर इसने मेरी किताबों पर ही बीट कर दी। मैंने गुस्सा किया तो कहती है, "यह मेरा भी तो घर है।" अब मैं क्या करूँ?

"बाबाजी डर गए····बाबाजी डर गए।" चिंकी ताली बजाते हुए चहक रही थी। मैंने चिंकी और चिड़िया को एक साथ देखा। दोनों की शैतानी दूब पर ओस की पहली बूँद की तरह ताज़गी भरी और प्यारी थी।

* * *

"सुनिए" – पत्नी का हाथ मेरे कंधे पर था। मैंने महसूस किया कि उनके स्वर में करुणा का पुट था, स्वर भीगा-भीगा-सा लगा।

"क्या बात है?" –

मेरे प्रश्न से पूर्व ही वे पास वाली खुली खिड़की से बाहर देखने लगी थीं। मैं थोड़ा चिंतित हो पास जाकर खड़ा हो गया।

"कुछ देखा?"

अभी भी समझ में नहीं आ रहा था कि पत्नी खिड़की से बाहर मुझे क्या दिखाना चाहती थी। थोड़ी झुँझलाहट भी हुई, बोला, "क्या बात है?"

"वह जो असरानी के घर की बंद खिड़की देखते हो न, उस पर नज़र गड़ाओ। देखो तो ज़रा ध्यान से!"

पत्नी सामने वाले फ़्लैट की बंद खिड़की की ओर बराबर देख रही थी। खिड़की पर शीशा लगा हुआ था। शीशे के इस ओर फ्रेम पर टिकी हुई एक चिड़िया थी, जो शीशे पर बार-बार चोंच मार रही थी। चोंच मारते समय चिड़िया का संतुलन बिगड़ जाता था, वह पंख फैला स्वयं को संतुलित करती और फिर शीशे पर चोंच से प्रहार करती।

"शायद अंदर जाना चाहती है!" मैंने सहज भाव से कहा। तभी मेरी गोदी में चढ़ी चिंकी लगभग चिल्ला उठी।

"बाबाजी, एक चिड़िया अंदर है, किसने बंद किया चिड़िया को?"

पत्नी का संकेत स्पष्ट हो रहा था। मेरे दृष्टिपथ में छाया कुहासा साफ़ हो गया था और अब सब कुछ साफ़ नज़र आ रहा था – बंद खिड़की के दोनों ओर चिड़ियाँ थीं। एक बाहर थी, मुक्त थी, मगर काँच की दीवार को तोड़ना चाहती थी। उसके प्रहार में आक्रोश था, गुस्सा था, झुँझलाहट और

कड़वाहट थी। खिड़की के भीतर एक और चिड़िया थी, जो चारों ओर से बंद थी। बंद दरवाज़ों और बंद खिड़कियों में कैद थी, घिरी हुई थी, असहाय और कुंठित-सी वह भी अंदर से काँच पर अपनी चोंच मार रही थी। चीं····चीं····करती हुई बंद कमरे में चक्कर लगाती और फिर खिड़की के काँच पर प्रहार करने लगती।

"एक बच्चा भी है, वह भी खिड़की के पीछे ही है।" पत्नी की आँखों में करुणा तैरने लगी थी और उन्होंने भारी मन से खिड़की से आँखें हटा लीं।

"सुनो, यह असरानी परिवार यदि पंद्रह दिन नहीं लौटा तो चिड़िया और उसका बच्चा पंद्रह दिन योंही बंद रहेंगे। ये तो मर जाएँगे।"

मगर जाती बार असरानी को भी तो देखना चाहिए था न! चिड़िया को बंद कर भाई ऐश करने चला गया। देखो न, कितनी बावली हो गई है? मुझे कोई रास्ता नज़र नहीं आ रहा था। चिड़िया बदहवास हो अंदर चक्कर लगाती, चीं-चीं करती और फिर बंद खिड़की के काँच पर चोंच मारने लगती। खाने को दाना भी न होगा, और साथ में बच्चा! खिड़की के बाहर शोक और दहशत में डूबा चिड़ा।

"बाबाजी, चिड़िया को निकालिए न!" चिंकी मचल रही थी, पत्नी की पीड़ा घनीभूत हो रही थी और मैं किंकर्तव्यविमूढ़ होता जा रहा था।

ये चिड़िया भी घरों में क्यों जाती है, अब हम कर भी क्या सकते हैं?

तभी बुकशेल्फ़ पर बैठी चिड़िया चीं-चीं कर उठी।

मैं चिड़िया के इस स्वर में आकंठ डूब गया। सारा शरीर झनझना उठा। बार-बार पत्नी के शब्द याद आने लगे, यदि पंद्रह दिन असरानी परिवार

नहीं लौटा तो····तो····तो? इस तो····तो····तो····के जवाब में बुकशेल्फ़ में घर बना पसरी चिड़िया बराबर चीं····चीं····कर रही थी।

दो दिन अपनी अर्थहीन व्यस्तताओं के बीच यह सब कुछ भूला रहा। मगर दो दिन बाद, उस शाम जैसे ही घर लौटा, सभी ने मुझे पकड़ लिया। पत्नी लगभग रुआँसी हो चली थी। बोली, "यह पाप है। अब यह देखा नहीं जाता। अभी भी वे काँच की दीवार पर सिर पटक रहे हैं। चिड़े की तो चोंच भी ज़ख्मी हो चुकी है। कुछ करना होगा, अभी और इसी वक्त।"

चिंकी ने मेरे दोनों हाथ थाम लिए थे और मचल रही थी, "बाबाजी, छुड़ाइए न – चिड़िया को बाहर लाइए, प्लीज़, बाबाजी!"

मेरे चारों ओर मेरा परिवार जमा था। पत्नी, बच्चे, बहुएँ, पोते-पोतियाँ और सब एक ही चीज़ दुहरा रहे थे – "इसे बचाइए।"

मैं अपनी खिड़की से झाँकता हूँ। सामने वही बंद खिड़की। खिड़की के अंदर थकी-हारी, भूखी-प्यासी, सहमी हुई चिड़िया जो रह-रह कर काँच पर चोंच मार रही थी। पास में छोटा-सा बच्चा सहमा-सहमा, टुकुर-टुकुर देखता-सा। कभी चिड़िया बच्चे को चोंच से अपनी चोंच मिला कर चीं-चीं करती हुई उसे धीरज बँधाने की कोशिश करती और फिर काँच पर प्रहार करने लगती। बाहर चिड़ा घबराया हुआ, लगभग परास्त, काँच पर लगातार प्रहार कर रहा था। उड़-उड़ कर जाता और फिर-फिर आकर काँच पर चोट करने लगता। वह अपनी मादा चिड़िया की चोंच से अपनी चोंच मिला, उसे भरोसा दिलाना चाहता था कि वह हिम्मत न हारे, वह ज़रूर सफल होगा। परंतु दोनों की चोंच के बीच काँच की दीवार थी।

मुझे लगा कि चिड़िया ज़रूर मर जाएगी, कितनी थक गई है, कितनी घबराई हुई है, अब और शक्ति नहीं रही है। और इस चिड़िया के साथ

इसका बच्चा भी मर जाएगा और इस हादसे को चिड़ा भी बर्दाश्त नहीं कर पाएगा।

"मैं क्या करूँ?" मैंने मन-ही-मन सोचना शुरू किया। ऐसे में घोंसले से फुदकती हुई चिड़िया बाहर निकल किताबों पर बैठ गई।

– चीं····चीं····चीं····चीं····। अभी भी गुस्सा हो। बचाओगे नहीं, ····बोलो····बोलो····बोलो····।

इस बार लगा कि चिड़िया का स्वर बेहद कातर है और यह स्वर मुझे ऊपर से नीचे तक चीर कर रख देगा।

मैं अपने छोटे बेटे जयदीप से कहता हूँ, "चलो, छत पर चलो।"

पूरा घर छत पर था, मैंने जयदीप के हाथ में एक पत्थर देते हुए कहा, "तोड़ दो खिड़की का काँच। अब और तटस्थ नहीं रह सकते।"



एक क्षण में खिड़की का काँच टूट चुका था। काँच टूटते ही चिड़िया ने विस्मय से चारों ओर देखा और फिर एकदम आकाश में उड़ने लगी। एक लंबा चक्कर आकाश का लगा, वह फिर खिड़की की चौखट तक गई, वहाँ अपने बच्चे के साथ चोंच मिलाई और उसे लेकर फिर आकाश के विस्तार में तैरने लगी। देखते-देखते चिड़ा भी इन दोनों के साथ उड़ान भरने लगा।

मुक्ति का संघर्ष, मुक्ति की हवाएँ, मुक्ति का आकाश क्या और कैसा होता है, यह दरअसल पहले मुझे मालूम नहीं था।

अपने कमरे में लौटा तो चिड़िया चहचहा रही थी, चीं····चीं···· चीं····चीं····अच्छा किया····अच्छा किया।

मुझे एहसास हुआ कि इस चीं····चीं····चीं····चीं····में भी मुक्ति की मिसरी घुली हुई है।

– श्याम व्यास

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. लेखक चिड़िया के किस व्यवहार से प्रभावित हो उठा?
2. लेखक की पत्नी और नन्हीं पोती उसकी किस बात पर हँस रही थीं?

3. लेखक की पत्नी सामने वाले फ़्लैट की बंद खिड़की की ओर बराबर क्यों देख रही थी?
4. चिड़ियों की असहाय स्थिति को देखकर लेखक ने अंततः क्या निश्चय कर डाला?

(ख) लिखित

1. लेखक को यह कैसे महसूस होने लगा कि चिड़िया के गृह-प्रवेश का मौसम शुरू हो गया है?
2. चिड़िया ने लेखक के घर में घोंसला बनाने के लिए क्या-क्या प्रयत्न किए?
3. चिड़िया को घोंसला बनाने से रोकने पर घर के बुजुर्गों का जोश क्यों समाप्त हो गया था?
4. घर के लोगों ने चिड़िया को घोंसला बनाने से रोकने के लिए क्या-क्या उपाय किए?
5. बंद खिड़की के दोनों ओर की चिड़ियों की मन:स्थिति में क्या अंतर था?
6. कहानी में चिड़ियों के संबंध में कौन-सी तीन स्थितियों का वर्णन है? इन तीनों पर लेखक की क्या अलग-अलग प्रतिक्रिया हुई?
7. आशय स्पष्ट कीजिए –
   (अ) दोनों की शैतानी दूब पर ओस की पहली बूँद की तरह ताज़गी भरी और प्यारी थी।
   (ब) मुक्ति का संघर्ष, मुक्ति की हवाएँ, मुक्ति का आकाश क्या और कैसा होता है, यह दरअसल पहले मुझे मालूम नहीं था।
8. इस कहानी के आधार पर सिद्ध कीजिए कि मुक्ति का सुख केवल मुक्ति पाने वालों को ही नहीं मिलता, बल्कि उनको भी प्राप्त होता है जो दूसरों को मुक्त करने में सहायक होते हैं।

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों को बोल-बोलकर पढ़िए –
   दरवाज़ा, अजनबी, ज़्यादा, कामकाज, ज़ोरदार, उजाला, अंदाज़, सहज, ताज़गी, जोश, नज़र, धीरज, प्लीज़, जमा, बुज़ुर्ग, जवाब, ज़रूर, उजालदान

2. कुछ क्रिया और विशेषण शब्दों में 'आहट' प्रत्यय लगाकर संज्ञा शब्द बनते हैं; जैसे – झुँझलाना + आहट = झुँझलाहट, कड़वा + आहट = कड़वाहट।
   निम्नलिखित शब्दों में 'आहट' प्रत्यय लगाकर नया शब्द बनाइए –
   घबराना, बड़बड़ाना, सकपकाना, चिल्लाना, गरम, चिचियाना, चिकना
3. पाठ में कुछ शब्दों के साथ 'सा' लगा है। यह रूप अधिकतर विशेषण के साथ लगता है और यह 'लगभग' के भाव का बोध कराता है; जैसे – छोटा-सा, भीगा-भीगा-सा। पाठ में आए ऐसे प्रयोग चुनकर लिखिए।
4. निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए परसर्गों की सहायता से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –
   ने से में पर का के की
   (अ) अब तक घर .... बुजुर्गों .... जोश समाप्त हो चुका होता है, बच्चों .... उत्साह भी क्षीण होने लगता है; जैसे इस खेल ..... उन .... मन भर गया हो।
   (ब) मौसम .... शुरुआत .... मैं .... जरूर विरोध किया था।
   (स) कभी चिड़िया बच्चे .... अपनी चोंच .... अपनी चोंच मिलाकर चीं-चीं करती हुई उस .... धीरज बँधाने .... कोशिश करती और फिर काँच .... प्रहार करने लगती।
   (द) काँच टूटते ही चिड़िया .... विस्मय .... चारों ओर देखा और फिर एकदम आकाश .... उड़ने लगी।

योग्यता-विस्तार

1. प्रेमचंद द्वारा लिखित कहानी 'रक्षा में हत्या' पढ़िए और प्रस्तुत कहानी के साथ उसकी तुलना कीजिए।
2. 'आजादी सबको प्रिय होती है' – विषय पर कक्षा में परिचर्चा का आयोजन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

सिलसिला – क्रम, कड़ी
अजनबी – अपरिचित

पड़ताल	–	छानबीन, जाँच
चुनिंदा	–	चुनी हुई, पसंद की
आश्वस्त	–	निश्चिंत
उजालदान	–	रोशनदान, झरोखा
ताकना	–	गौर से देखना
चिंदिया	–	छोटे-छोटे टुकड़े
सठिया जाना	–	बुढ़ापे के कारण मानसिक और शारीरिक रूप से कमज़ोर होना
प्रहार	–	चोट
आक्रोश	–	क्रोध
किंकर्तव्यविमूढ़	–	दुविधा में पड़ना
आकंठ	–	पूर्ण रूप से, गले तक
अर्थहीन	–	बेकार की, निरर्थक
हादसा	–	दुर्घटना
कातर	–	डरा हुआ
बावली	–	पगली
बदहवास	–	घबराया हुआ

3. समदर्शी संत श्री नारायण गुरु

(प्रस्तुत पाठ केरल के समदर्शी संत श्री नारायण गुरु के जीवन और कार्यों का परिचय देता है। उन्होंने तत्कालीन समाज में फैली हुई विकृतियों को दूर किया, अधिकार वंचित और उपेक्षित लोगों को धार्मिक अधिकार दिलाने के साथ-साथ उन्हें शिक्षित और स्वावलंबी भी बनाया। उनके कार्यों के व्यापक प्रभाव से कोई अछूता नहीं रह सका। वे भेद विहीन अद्वैत की दृष्टि से सामाजिक विषमताओं को मिटाने में सफल हुए। उन्होंने ज्ञान, स्नेह और सौहार्द से समाज में समरसता का प्रसार किया।)



श्री नारायण गुरु का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ था जब केरल के समाज में ऊँच-नीच की दुर्भावना फैली हुई थी। सार्वजनिक पाठशालाओं में पढ़ने, सरकारी विभागों में कार्य करने और देवालयों में जाने तक के अधिकार सबको प्राप्त नहीं थे। इन सामाजिक विकृतियों के पीछे भ्रामक धारणाएँ थीं, जिन्हें दूर करने के प्रत्येक प्रयास विफल होते गए। लेकिन श्री नारायण गुरु की सामाजिक क्रांति से इस समस्या का समुचित निराकरण हुआ।

श्री नारायण का जन्म सन 1856 के श्रावण मास में तिरुवनंतपुरम् से लगभग दस किलोमीटर दूर स्थित चेंपषंती नामक गाँव में हुआ था। केरल

में इन्हीं दिनों श्रावण पूर्णिमा के आसपास ओणम का पावन पर्व मनाया जाता है। इस पर्व पर लोग आपस के भेदभाव भुलाकर मिलते-जुलते हैं और खुशियाँ मनाते हैं। ऐसे सुखद वातावरण में जनमे श्री नारायण गुरु ने भी सामाजिक भेदभाव और आपसी कटुता को मिटाने का कार्य किया।

नारायण के पिता माडन आशान ज्योतिष और आयुर्वेद के ज्ञाता थे। उनकी माता कुट्टिअम्मा बड़ी साध्वी महिला थीं। इनके परिवार का पारंपरिक कार्य आयुर्वेदिक चिकित्सा करना था। इनके मामा कृष्णन उस समय के प्रसिद्ध वैद्य थे। सभी परिजन बालक नारायण को प्यार से 'नाणु' कहकर पुकारते थे।

जाति-प्रथा और छुआछूत के उस ज़माने में नाणु अछूत कहे जाने वाले लोगों से सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करता था। वह उनके बच्चों को घर के बड़े लोगों की चेतावनी की परवाह किए बिना छू लेता था। कभी-कभी उन बच्चों को नहलाता और फिर घर जाकर बड़ों को छू लेता। इस पर बड़ों को स्नान करना पड़ता था। नाणु जान-बूझकर छुआछूत के नियमों का उल्लंघन करता था जिससे वह लोगों को जाति-भेद की निरर्थकता का बोध करा सके।

नाणु को पाँच वर्ष की वय में परंपरागत ढंग से संस्कृत, मलयालम और तमिल की शिक्षा दी जाने लगी। वह पढ़ाई के साथ-साथ घर के कार्यों में भी हाथ बँटाता। वह गाय चराने जाता, पेड़ पर चढ़ कर अपने मधुर स्वर में संस्कृत श्लोकों को याद करता और कभी-कभी स्वरचित पद गाया करता। एक बार उसके मामा किसी संस्कृत श्लोक का अर्थ नहीं कर पा रहे थे तभी उसने उस कठिन श्लोक का अर्थ बता दिया। भानजे की प्रतिभा से मामा कृष्णन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने नाणु को उच्च शिक्षा के लिए

करूनागपल्ली के गुरुकुल में भेज दिया। यह गुरुकुल कुम्मंप्रिल्ली रामन पिल्लै आशान जैसे विद्वान आचार्य के कारण प्रसिद्ध था। रामन पिल्लै ने मेधावी छात्र नारायण को साहित्य, ज्योतिष, वेदांत आदि की शिक्षा दी।

उन दिनों नाणु श्रीकृष्ण के बाल रूप की उपासना करता था। अचानक एक दिन नाणु के सहपाठियों ने उसे किसी के पीछे भागते हुए देखा, लेकिन उसके आगे कोई दिख नहीं रहा था। कुछ दूर दौड़ने के बाद नाणु को बेहोशी आ गई। वह गिर पड़ा। बेहोशी समाप्त होने के बाद आचार्य और सहपाठियों ने उससे दौड़ने और बेहोश होने का कारण पूछा। नाणु ने स्वरचित कविता में श्रीकृष्ण की छवि का वर्णन किया। उन कविताओं में उसकी अपनी अनुभूति थी। आगे चलकर नाणु की काव्य-प्रतिभा और विकसित हुई।

चार वर्ष अध्ययन करने के बाद नारायण अपने गाँव लौटे। उन्होंने एक ऐसी पाठशाला प्रारंभ की जिसमें सभी जातियों के बच्चों को समान रूप से शिक्षा दी जाती थी। वे भगवद्गीता पढ़ाते, संपर्क में आने वालों को उत्तम कार्यों की प्रेरणा देते, ध्यान और नाम-जप के लिए उत्साहित-प्रोत्साहित करते। लोग उन्हें नाणु आशान कहने लगे। आशान का अर्थ है—आचार्य।

कुछ दिनों बाद सगे-संबंधियों के ज़ोर देने पर नारायण का विवाह हुआ। परंपरा के अनुसार नारायण विवाह के लिए स्वयं ससुराल नहीं गए। उनकी बहन ने कन्या को वस्त्र देकर उसे बहू बनाने की प्रथा पूरी की। एक दिन नारायण ससुराल गए। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, "प्रत्येक व्यक्ति के जन्म का एक लक्ष्य होता है। हम दोनों के जन्म के भी लक्ष्य हैं। हमें भी उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए"—और वे वहाँ से चले आए। उनका वैवाहिक जीवन यहीं तक सीमित रहा।

माता-पिता के देहांत के बाद नारायण का मन संसार से विरक्त हो गया। सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर नाणु आशान निरंतर चलते रहे – दक्षिण भारत के एक प्रांत से दूसरे प्रांत की ओर। जब तक पैर जवाब नहीं देते, वे चलते ही रहते। यह यात्रा उनकी तपस्या थी, साथ ही साधारण लोगों के जीवन के अध्ययन का माध्यम भी। उन्होंने जन-जन की पीड़ा को निकट से देखा और उनके दुख के कारणों को समझा, उनका समाधान ढूँढ़ने का प्रयत्न किया।

उन्होंने कन्याकुमारी के दक्षिणी छोर की पर्वतीय शृंखला में स्थित 'मरुत्वामला' की एक गुफा में कठिन तपस्या की और सत्य का साक्षात्कार किया। इसके बाद वे जन-जीवन के बीच पहुँचे।

वे नेय्यार नदी के किनारे अरुविप्पुरम् नामक स्थान पर रहने लगे, जहाँ तब घना वन था। उस वन में हिंसक जानवर रहते थे। धीरे-धीरे आसपास के क्षेत्रों के लोगों को ज्ञात हो गया कि अरुविप्पुरम् में एक सिद्ध योगी आ पहुँचे हैं। लोग उनके दर्शन के लिए आने लगे। कोई महात्मा के दर्शन मात्र के लिए आता तो कोई रोग से मुक्ति के लिए और कोई किसी पारिवारिक या सामाजिक समस्या का समाधान ढूँढ़ने के लिए आता था। उनका यश दूर-दूर तक फैल गया। लोग उन्हें श्रद्धा से 'नारायण गुरु' कहने लगे।

कुछ लोगों ने नारायण गुरु के सामने मंदिर में जाने और ईश्वर की उपासना करने से वंछित किए जाने की पीड़ा व्यक्त की। उनकी इच्छा पूरी करने के लिए गुरु ने सन 1888 की शिवरात्रि को अरुविप्पुरम् की एक चट्टान को पीठ मानकर महादेव शिवशंकर की प्रतिष्ठा कर दी। उन्होंने

इस शिवलिंग को नेय्यार नदी की गहरी जलधारा से निकाला था। उन दिनों केरल में ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी दूसरे वर्ण का व्यक्ति मंदिर की स्थापना नहीं कर सकता था। यहाँ तक कि मंदिर के पास की सड़क से भी सब किसी को चलने की अनुमति नहीं थी। स्मृति ग्रंथों के नियमों और ब्राह्मण-पुरोहितों के उपदेशों के अनुसार शासन करने वाले राजा की दृष्टि में भी दूसरे वर्णों के व्यक्ति द्वारा मंदिर बनवाने का कार्य क्षमा करने के योग्य नहीं था। फिर भी तिरुवितांकूर के शासकों ने अपनी प्रजा द्वारा स्थापित इस मंदिर को स्वीकार किया, क्योंकि एक ऋषि की इच्छाशक्ति का सामना करने की शक्ति किसी में नहीं थी। इस घटना के साथ शताब्दियों से समाज के अधिकार वंचित और उपेक्षित लोगों में एक नया साहस जाग्रत हुआ। वे निराशा और हीनता की ग्रंथि से मुक्त होने लगे।

अरुविप्पुरम् की शिव प्रतिष्ठा एक क्रांति का सूचक थी और यह क्रांति सबको एकात्म और सबको सुखी देखने की कामना से उपजी हुई थी। यह श्री नारायण गुरु की समदर्शिता का परिणाम थी। इस देश में शताब्दियों से बेरोक चली आने वाली जाति-प्रथा की संकीर्णताओं और पुरोहितों-पुजारियों द्वारा फैलाई गई सामाजिक विकृतियों की जड़ों को उन्होंने एकदम काट डाला। इतना ही नहीं, उन्होंने ज़मींदारी की प्रथा पर भी कुठाराघात किया, क्योंकि ज़मींदारी की नींव जाति-प्रथा पर टिकी हुई थी। इस दृष्टि से केरल भारत का ऐसा पहला प्रांत है, जहाँ विधेयक लाकर ज़मींदारी की प्रथा समाप्त कराई गई थी। अरुविप्पुरम् में शिव मंदिर की स्थापना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि वहाँ धर्म को आडंबरों से मुक्त करने के लिए भेदभाव रहित अद्वैत तत्त्व और उपनिषद के मार्ग को व्यवहार में

लाया गया। उपनिषद विश्व भ्रातृत्व के आदर्श पर जोर देते हैं। अरुविप्पुरम् के मंदिर की दीवार पर गुरु ने मलयालम में सौहार्द का एक संदेश लिखवाया, जिसका अर्थ है –

"यह वह आदर्श स्थान है जहाँ
बिना किसी जातिभेद एवं धर्म-द्वेष के
सभी जन रहते हैं भाईचारे से।"

नारायण गुरु ने जनसाधारण का जीवन स्तर ऊपर उठाने के लिए केवल पूजा-अर्चना को ही महत्त्व नहीं दिया, अपितु उन्होंने देवालयों के साथ-साथ पाठशालाओं और हथकरघा इत्यादि कुटीर उद्योगों के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी करवाई। देवालयों के साथ उद्यान और पुस्तकालयों को भी बनाने का सुझाव दिया। उन्होंने एक ऐसा देवालय बनवाया जिसमें उपनिषद के तत्त्वमसि (तत्-त्वम्-असि = वह तुम्हीं हो) महावाक्य का स्मरण कराते हुए मूर्ति के स्थान पर दर्पण लगाया गया और सत्य, धर्म, दया, शांति आदि शब्द लिखकर प्रभापूर्ण फलक स्थापित किए गए थे। उन्होंने 'विद्या द्वारा प्रबुद्ध बनो', 'संगठन द्वारा शक्तिशाली बनो' – इस प्रकार की सूक्तियों द्वारा उपेक्षित जन-जीवन को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

उन दिनों केरल के अधिकार वंचित और उपेक्षित शिक्षित युवकों को सरकारी नौकरियाँ और छात्रों को सार्वजनिक विद्यालयों में प्रवेश दिलाने के प्रयास डॉ. पल्पू नामक एक व्यक्ति किया करते थे। किंतु तिरुवितांकूर राज्य की सरकार ने उनके सारे निवेदनों को ठुकरा दिया था। डॉ. पल्पू मैसूर रियासत में स्वास्थ्य विभाग के अधिकारी थे। सन 1891 में डॉ. पल्पू की भेंट स्वामी विवेकानंद से हुई। उन्होंने केरल की सामाजिक विकृतियों

को दूर करने का मार्ग स्वामी जी से पूछा। उन्होंने सुझाया, यदि आप किसी श्रेष्ठ तपस्वी महात्मा के नेतृत्व में यह कार्य करें तो आपको अवश्य सफलता मिलेगी। ऐसा श्रेष्ठ तपस्वी कौन हो सकता है, जिसके नि:स्वार्थ और अमोघ वचन को कोई अस्वीकार न कर सके – डॉ. पल्पू ने सोचा। उन्हें श्री नारायण गुरु का ध्यान आया। वे गुरु से मिलने के लिए अरुविप्पुरम् पहुँचे।

श्री नारायण गुरु के संपर्क में आने के बाद उनकी प्रेरणा से डॉ. पल्पू ने सन 1903 में 'श्री नारायण धर्म परिपालन योगम्' नाम का संगठन बनाया। इस संगठन ने नारायण गुरु के मार्ग दर्शन में केरल की सामाजिक विकृतियों को दूर करने का महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारंभ किया।

सन 1904 में नारायण गुरु ने तिरुवनंतपुरम् से तीस मील दूर बसे 'वर्कला' नामक स्थान की एक छोटी-सी पहाड़ी को अपना विश्राम-निकेतन बनाया। इसे उन्होंने शिवगिरि के नाम से पुकारा था। यहाँ गुरु ने एक अंग्रेजी पाठशाला, एक बुनाई घर और एक आराधनालय स्थापित किया। आसपास की वंचित जाति के बच्चों को उन्होंने आश्रम में स्थान दिया, उन बच्चों को स्कूल भेजकर पढ़ाया, उन्हें कोई-न-कोई काम सिखाया, किसी-किसी को पूजा कर्म सिखाया तो किसी को आश्रम का रसोइया बनाकर जाति की रूढ़िवादियों की निरर्थकता समझाई। इन्हीं लड़कों के लिए गुरु ने सरल शैली में अद्‌वैत वेदांत का प्रतिपादन करने वाली प्रार्थना रची थी।

सन 1924 में गुरु ने आलुवा अद्‌वैत आश्रम में सर्वधर्म सम्मेलन आयोजित किया। यह एशिया का पहला और संसार का दूसरा विश्वधर्म सम्मेलन था। हिंदू, बौद्ध, जैन, इस्लाम, पारसी, सिख सभी

धर्मों के प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया। श्रीलंका से भी प्रतिनिधि आए थे। सम्मेलन स्थल में गुरु ने इस प्रकार लिखवाया–"वाद-विवाद और विजय प्राप्त करने के लिए नहीं, ज्ञान के लिए और ज्ञान देने के लिए"। सम्मेलन के समापन पर गुरु का संदेश पढ़ा गया–"यहाँ जो विश्वधर्म सम्मेलन अभी संपन्न हुआ है, उसमें भाग लेने वाले सज्जनों के भाषणों से यह स्पष्ट हुआ है कि धर्मों का सार एक है। अत: धर्म को लेकर झगड़ा करना व्यर्थ है। हमें शिवगिरि में एक ऐसी महापाठशाला की स्थापना करनी चाहिए, जिसमें सारे धर्मों के अध्ययन की सुविधा हो।" इस धर्म महापाठशाला को गुरु ने 'ब्रह्मविद्यामंदिर' नाम दिया।

केरल में नारायण गुरु द्वारा लाई गई सामाजिक क्रांति विस्फोटक नहीं थी। अपितु वह उनकी समदर्शिता का परिणाम थी। वे सामाजिक सुधार के कार्यक्रमों को सौहार्द के साथ कार्यान्वित करते थे जिससे विभिन्न जातियों के बीच अपनेपन की भावना पनप सकी। इसके लिए उन्होंने पहले लोगों के मन को परिवर्तित किया। वे सभी धर्मों के सार रूप में 'एक जाति, एक धर्म, एक ईश्वर' का संदेश देते थे। लगभग 40 वर्ष के सार्वजनिक जीवन में उन्होंने किसी के प्रति कोई कटु शब्द नहीं कहा, किसी से विद्वेष नहीं किया। उन्होंने विरोध किया था – मानवता और स्वतंत्रता से समाज को वंचित करने वाले दुराचारों का। इससे सामाजिक समरसता की धारा प्रवाहित हुई। समाज में विभेद-विद्वेष की भावना समाप्त हुई।

सन 1923 में दक्षिण भारत की यात्रा पर आए विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने श्री नारायण गुरु से शिवगिरि आश्रम में भेंट की। उन्होंने श्री नारायण गुरु के कार्यों की प्रशंसा करते हुए लिखा कि "मुझे अपने जीवन में कई योगियों से मिलने का अवसर मिला, लेकिन श्री नारायण जैसा

आध्यात्मिक तेज मैंने किसी योगी में नहीं देखा।" जब महात्मा गांधी 1925 में केरल आए तो वे भी शिवगिरि मठ जाकर श्री नारायण गुरु से मिले। गुरु जी ने महात्मा गांधी को समाज के उन्नयन के लिए शिक्षा और स्वावलंबन का परामर्श दिया। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में समाज के सभी अंगों को साथ लेकर चलने की बात की और उपेक्षित और अधिकार वंचित कमजोर लोगों के सहयोग का महत्त्व समझाया। उनके विचारों से गांधी जी अत्यंत प्रभावित हुए।

सन 1928 में शिवगिरि में समदर्शी संत श्री नारायण गुरु ने समाधि ली।

मानवमात्र की एकात्मकता के लिए उन्होंने सदाचार, शिक्षा और ईश्वर भक्ति का मार्ग दिखाया। समाज की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करना ही उनका उद्‌देश्य था। इसके लिए उन्होंने ज्ञान, स्नेह और सौहार्द का संदेश दिया।

– जी. गोपीनाथन

प्रश्न–अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. *ओणम पर्व की क्या विशेषता है?*
2. नारायण के मामा को किस घटना से उनकी प्रतिभा का पता चला?
3. गुरुकुल में नारायण ने किन-किन विषयों में शिक्षा प्राप्त की?

4. नारायण ने गाँव में किस प्रकार की पाठशाला स्थापित की?
5. लोग नारायण को नाणु आशान क्यों कहने लगे?
6. रवींद्रनाथ ठाकुर ने किन शब्दों में नारायण गुरु के कार्यों की प्रशंसा की?
7. श्री नारायण गुरु ने महात्मा गांधी को क्या परामर्श दिया?

(ख) लिखित

1. नारायण गुरु के जन्म के समय केरल समाज की क्या स्थिति थी?
2. नारायण ने अपनी पत्नी को क्या कहा और क्यों?
3. नारायण गुरु की तपस्या को कल्याणकारी क्यों कहा गया है?
4. श्री नारायण गुरु ने सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए क्या-क्या प्रयास किए?
5. श्री नारायण गुरु द्वारा स्थापित किए गए देवालय सामान्य देवालयों से किस प्रकार भिन्न हैं?
6. डॉ. पल्पू ने स्वामी विवेकानंद के सुझाव पर किस प्रकार अमल किया?
7. श्री नारायण गुरु द्वारा लाई गई सामाजिक क्रांति की क्या विशेषता थी?

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों को बोलकर पढ़िए –
   आविर्भाव, विकृति, आयुर्वेदिक, नाणु, मरुत्वामला, दर्शनार्थी, शिरोधार्य, एकाधिकार, विद्वेष, स्वावलंबन, तिरुवनंतपुरम्
2. हिंदी में तीन उपसर्ग – 'वि', दुः, निः – प्रायः विरोध, निषेध, अभाव के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं; जैसे – विफल, दुर्भावना और निराधार। परंतु 'वि' उपसर्ग कभी-कभी 'विशेषता' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है; जैसे – विज्ञान।
   निम्नलिखित शब्दों में से उपसर्ग छाँटते हुए यह भी बताइए कि वे किस भाव की अभिव्यक्ति करते हैं –
   विरक्त, निरुत्तर, दुर्दशा, निर्जन, निश्चल, निःस्वार्थ, दुष्कर्म, विशेषता, विभाग, विपक्ष
3. निम्नलिखित वाक्य पढ़िए –
   (क) नारायण गुरु के सामने मंदिर <u>बना</u>।
   (ख) कुछ लोगों ने नारायण गुरु के सामने मंदिर <u>बनाया</u>।

(ग) उन्होंने दूसरे वर्गों के व्यक्तियों द्वारा मंदिर बनवाया।

उपर्युक्त तीनों वाक्यों 'बना', 'बनाया' और 'बनवाया' क्रियाएं आई हैं। 'बना' अकर्मक क्रिया है, 'बनाया' सकर्मक और प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया है और 'बनवाया' द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया है। द्वितीय प्रेरणार्थक ही वास्तविक प्रेरणार्थक क्रिया है। द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया का प्रयोग तब होता है जब कर्ता स्वयं काम न कर किसी अन्य व्यक्ति को काम करने की प्रेरणा देता है। द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया के भीतर प्राय: 'वा' का प्रयोग होता है; जैसे – 'लिखना, लिखाना, लिखवाना; सोना, सुलाना, सुलवाना।

निम्नलिखित क्रियाओं की प्रथम प्रेरणार्थक और द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया बनाइए – उठना, सुनना, चलना, पीना, खोलना।

पाठ में आए आदरसूचक एकवचन ढूँढ़िए।

4. उदाहरण के अनुसार निम्नलिखित वाक्यों को संयुक्त वाक्यों में बदलिए –

उदाहरण : गाँव लौट कर उन्होंने एक पाठशाला प्रारंभ की।
⇒ वे गाँव लौटे और उन्होंने एक पाठशाला प्रारंभ की।

(क) मरुत्वामला की एक गुफा में कठिन तपस्या कर उन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया।

(ख) उनका यश दूर-दूर तक फैलने के बाद लोग उन्हें श्रद्धा से 'नारायण गुरु' कहने लगे।

(ग) उन्होंने इस प्रकार की सूक्तियों से उपदेश देकर उपेक्षित जन-जीवन को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

योग्यता-विस्तार

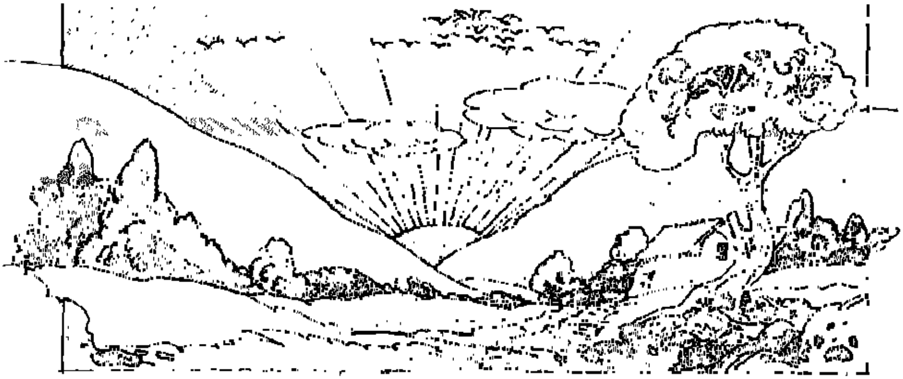
भारत के कुछ ऐसे अन्य संत-महात्माओं के बारे में जानकारी प्राप्त कीजिए, जिन्होंने पीड़ित-शोषित वर्ग के उत्थान के लिए अपना समस्त जीवन अर्पित कर दिया था। उनके कार्यों के बारे में कक्षा में चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

आविर्भाव - महापुरुष का जन्म, उत्पत्ति

विकृतियाँ - दोष

भ्रामक धारणा	–	भ्रम फैलाने वाले मत, मिथ्या विश्वास
निराकरण	–	समाधान करना, दूर करना, दूर हटाना
साध्वी	–	साधु स्वभाव की स्त्री
प्रतिभा	–	मौलिकता, सूझ-बूझ, असाधारण बुद्धि
मेधावी	–	बुद्धिमान
शिरोधार्य	–	स्वीकार्य
प्रतिष्ठित	–	स्थापित
ग्रंथि	–	गाँठ
कुठाराघात	–	भारी चोट
विधेयक	–	कानून बनने से पूर्व विधानमंडल में प्रस्तुत प्रारूप (मसौदा), बिल
अमोघ वचन	–	निष्फल न होने वाले वचन
समरसता	–	मेल-मिलाप की एकरसता
विस्फोटक	–	विनाशकारी
पक्षधर	–	समर्थक
उन्नयन	–	उन्नति, उत्थान

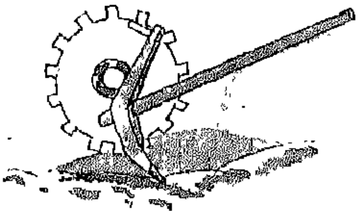


4. जागरण गीत

(प्रस्तुत कविता में कवि असावधान और बेखबर पड़े लोगों को सोने के बदले जागने और पतन के रास्ते चलने के बदले प्रगति पथ पर आगे बढ़ने का संदेश देता है। कवि का मानना है कि कल्पना-लोक में विचरण करने वालों को ठोस धरती की वास्तविकताओं को जानना चाहिए। उन्हें श्रम में सुख का अनुभव करना चाहिए। कवि रास्ते में रुके हुए और घबराए हुए लोगों को साहस देना चाहता है। वह मन की संकीर्णता और बंधन को तोड़कर बूँद से सागर बन जाने की प्रेरणा देता है। सबका उत्थान सब में नई गतिशीलता चाहने वाला कवि यह तो चाहता है कि सभी प्रगति-पथ पर बढ़ें, पर यह नहीं चाहता कि कोई उचित मार्ग से विचलित हो।)

अब न गहरी नींद में तुम सो सकोगे,
गीत गाकर मैं जगाने आ रहा हूँ।
अतल अस्ताचल तुम्हें जाने न दूँगा,
अरुण उदयाचल सजाने आ रहा हूँ।

कल्पना में आज तक उड़ते रहे तुम,
साधना से सिहरकर मुड़ते रहे तुम।
अब तुम्हें आकाश में उड़ने न दूँगा,
आज धरती पर बसाने आ रहा हूँ।



सुख नहीं यह, नींद में सपने सँजोना,
दुख नहीं यह, शीश पर गुरु भार ढोना।
शूल तुम जिसको समझते थे अभी तक,
फूल मैं उसको बनाने आ रहा हूँ।

देखकर मँझधार को घबरा न जाना,
हाथ ले पतवार को घबरा न जाना।
मैं किनारे पर तुम्हें थकने न दूँगा,
पार मैं तुमको लगाने आ रहा हूँ।



तोड़ दो मन में कसी सब शृंखलाएँ,
तोड़ दो मन में बसी संकीर्णताएँ।
बिंदु बनकर मैं तुम्हें ढलने न दूँगा,
सिंधु बन तुमको उठाने आ रहा हूँ।

तुम उठो, धरती उठे, नभ शिर उठाए,
तुम चलो गति में नई गति झनझनाए।
विपथ होकर मैं तुम्हें मुड़ने न दूँगा,
प्रगति के पथ पर बढ़ाने आ रहा हूँ।

– सोहनलाल द्विवेदी

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

(क) मौखिक

1. गहरी नींद में बेखबर सोए लोगों को कवि किस प्रकार जगाना चाहता है?
2. अस्ताचल और उदयाचल से आप क्या समझते हैं?
3. कवि श्रम और कार्य निष्ठा से भागने वालों को क्या निर्देश दे रहा है?

(ख) *लिखित*

1. 'जागरण गीत' का मूलभाव अपने शब्दों में लिखिए।
2. 'पार मैं तुमको लगाने आ रहा हूँ।' – इन शब्दों द्वारा कवि किस परिस्थिति में सहायक बनने का आश्वासन दे रहा है?
3. प्रगति के पथ पर बढ़ने की बात कवि किन लोगों के संबंध में कह रहा है?
4. भाव स्पष्ट कीजिए –

   (क) *अब तुम्हें आकाश में उड़ने न दूँगा,*
   आज धरती पर बसाने आ रहा हूँ।

   (ख) बिंदु बनकर मैं तुम्हें ढलने न दूँगा,
   सिंधु बन तुमको उठाने आ रहा हूँ।

योग्यता-विस्तार

देशवासियों को जगाने और सावधान रहने की प्रेरणा देनेवाली कविताएँ अनेक कवियों ने लिखी हैं। ऐसी चार कविताओं का संग्रह कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

अतल - बहुत गहरा
अरुण - लाल

अस्ताचल	–	पश्चिम दिशा, पश्चिम का कल्पित पर्वत जिसके पीछे सूर्य का अस्त होना माना जाता है
उदयाचल	–	पूर्व दिशा, पूर्व दिशा का कल्पित पर्वत। माना जाता है कि सूर्य उसी से उदय होता है
शूल	–	काँटा
मँझधार	–	धारा के बीचोंबीच
शृंखला	–	बंधन, ज़ंजीर, कड़ियाँ
संकीर्णता	–	क्षुद्रता, ओछापन, तंगदिली
विपथ होना	–	राह से भटकना

5. राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा

(प्रस्तुत पाठ में हमारी स्वतंत्रता, संप्रभुता, एकता और अस्मिता के प्रतीक राष्ट्रीय ध्वज की विकास यात्रा के विभिन्न चरणों का वर्णन किया गया है। इस वर्णन से हमें स्वतंत्रता संग्राम के दौरान देश में ही नहीं, विदेशों में भी राष्ट्रीय ध्वज के निर्माण और उसकी गरिमा बनाए रखने के लिए स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा किए गए कार्यों और बलिदानों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है।)

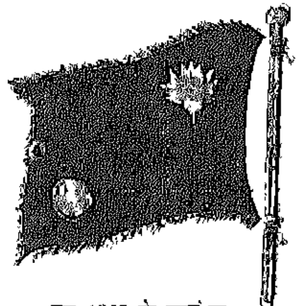
राष्ट्रीय ध्वज राष्ट्र की स्वतंत्रता, संप्रभुता, एकता और अस्मिता का प्रतीक होता है। इससे राष्ट्रीय गौरव झलकता है। इसके सम्मान में प्रत्येक नागरिक का अपना सम्मान सन्निहित रहता है। इसके सम्मान की रक्षा के लिए देश के नागरिक अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार रहते हैं। इसी दृष्टि से हमारे स्वतंत्रता-सेनानियों ने राष्ट्र के ऊपर थोपे गए अंग्रेज़ी झंडे 'यूनियन जैक' के विरुद्ध अपने राष्ट्रीय ध्वज की आवश्यकता का अनुभव किया और तिरंगे झंडे का निर्माण किया। किंतु पराधीन भारत में इस तिरंगे झंडे को प्रतिष्ठित करना आसान नहीं था। उसके लिए अंग्रेज़ी शासन की बर्बरता और यातनाओं का डटकर सामना करना पड़ता था तथा बलिदान के लिए तत्पर रहना पड़ता था। स्वतंत्रता संग्राम के समय तिरंगे के सम्मान के लिए स्वतंत्रता-सेनानियों के दिए गए बलिदानों के एक नहीं, अनेक ज्वलंत उदाहरण विद्यमान हैं।

अगस्त सन 1942 के 'अंग्रेज़ों भारत छोड़ो' नामक स्वतंत्रता आंदोलन में एक अदम्य शौर्य और राष्ट्र प्रेम का उदाहरण सामने आया, जिसे देख पूरा देश रोमांचित हो उठा। पटना विधान परिषद पर तिरंगा झंडा फहराने के लिए एकत्र समूह से निकल कर एक युवक आगे बढ़ा। पुलिस की बंदूकें तनी थीं। गोली चली। इसके पहले कि वह युवक गोली लगने के बाद भूमि पर गिरे, दूसरा युवक आगे आया। उसने तिरंगा झंडा ऊँचा उठाए हुए कदम बढ़ाया, उसे भी गोली लगी। इसके बाद तीसरा युवक आगे आ तिरंगा थाम कर आगे बढ़ा और फिर गोली चली ··· चलती रही ··· युवक ढेर होते रहे। पर, तिरंगा न रुका – न झुका, आगे और आगे बढ़ता गया। अंत में सातवें युवक ने विधान परिषद पर तिरंगा फहरा ही दिया। उस आंदोलन में ऐसी घटना अनेक स्थानों पर हुई। झंडे की शान रखने के लिए आज़ादी के दीवानों को भला कौन रोक सकता था। वे तो सदा ही अपनी जान हथेली पर लिए रहते थे। इस अभियान में महिलाएँ भी पीछे नहीं रहीं।

19 अगस्त, 1942 को श्रीमती अरुणा आसफ अली ने गोवालिया टैंक मैदान में झंडा फहरा कर अंग्रेज़ों के सामने भारत क़ी स्वातंत्र्य-चेतना का उद्घोष किया। असम की कनकलता मलकटरी नामक स्थान पर झंडा फहराते हुए शहीद हो गई, मिदनापुर में मातंगिनी हाजरा ने गोली लगने के बाद भी झंडा हाथ से नहीं छोड़ा। तमिलनाडु के युवक तिरूप्पुर कुमारन एक मज़दूर अधिवेशन में जब तिरंगा लेकर आगे बढ़े तो उन पर गोलियों की बौछार हुई। उनके प्राण छूट गए, लेकिन हाथ से तिरंगा झंडा नहीं छूटा। हमारा राष्ट्रीय तिरंगा न जाने कितने-कितने रूपों में, कितने इतिहास खंडों में हमारे बीच लहराते हुए विजय का उल्लास और मंगल का संकेत देता रहा है, इसकी कोई गणना नहीं।

ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन भारत में ब्रिटिश ध्वज 'यूनियन जैक' सरकारी भवनों पर लहराता था जो हमारी पराधीनता का सूचक था। यह हमारे लिए लज्जा तथा कलंक की बात थी। अतः अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध स्वतंत्रता-सूचक अपने राष्ट्रीय ध्वज के निर्माण की ओर राष्ट्र-प्रेमियों का ध्यान जाना स्वाभाविक ही था। ऐसे राष्ट्रीय ध्वज के उद्भव और विकास की कहानी कम रोचक और रोमांचक नहीं है। इसके साथ स्वतंत्रता संग्राम की कहानी जुड़ी हुई है। इस कहानी में स्वतंत्रता-सेनानियों के त्याग और बलिदान के साथ-साथ अंग्रेज़ों के क्रूर अत्याचार और दमन-चक्र के विरुद्ध उनके साहस तथा शौर्य की स्मृतियाँ भी पिरोई हुई हैं।

'यूनियन जैक' के विरुद्ध अपने राष्ट्रीय ध्वज के निर्माण का पहला प्रयास सन 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के समय हुआ था, पर उस संग्राम की विफलता के साथ ही उसका प्रचलन भी समाप्त हो गया।

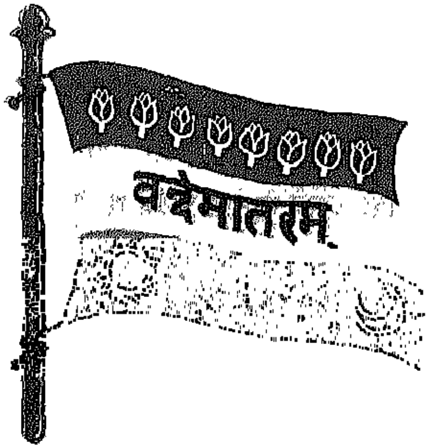


सन 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का ध्वज



भगिनी निवेदिता का ध्वज

सन 1905 में स्वामी विवेकानंद की शिष्या भगिनी निवेदिता ने एक राष्ट्रीय ध्वज बनाया। यह ध्वज सन 1906 में कांग्रेस के कोलकाता अधिवेशन में प्रदर्शित किया गया। यह झंडा वर्गाकार था। इसकी सतह लाल थी। इसके किनारों पर 108 ज्योतियाँ बनी

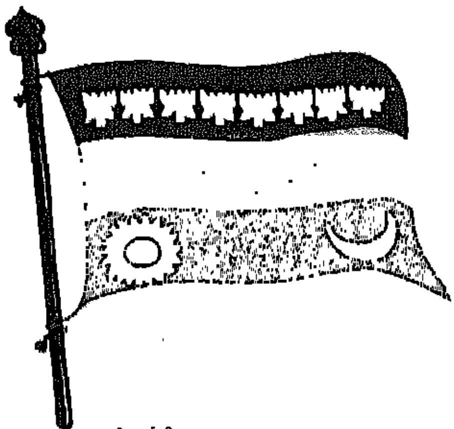


सन 1906 में निर्मित राष्ट्रीय ध्वज

हुई थीं, बीच में पीले रंग से वज्र का चिह्न अंकित था। इस पर बांग्ला अक्षरों में **वन्देमातरम्** लिखा हुआ था।

16 अगस्त 1905 में जब बंगाल विभाजन प्रभावी हो गया, इस विभाजन के विरुद्ध तेज गति से आंदोलन होने लगा। इन्हीं दिनों 17 अगस्त, 1906 को पारसी बागान कोलकाता में आयोजित रैली में एक दूसरा झंडा फहराया गया। इस झंडे में वज्र का चिह्न नहीं था, इसमें हरी, पीली और लाल तीन पट्टियाँ थीं। ऊपर की हरी पट्टी पर भारत के आठ प्रांतों के प्रतीक रूप में आठ अधखिले कमल के फूल बनाए गए थे। पीली पट्टी पर नीले रंग से **वन्देमातरम्** लिखा हुआ था। नीचे की लाल पट्टी पर सूर्य और अर्धचंद्र की आकृतियाँ थीं। यही तिरंगा झंडा 1906 में दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में हुए राष्ट्रीय कांग्रेस के कोलकाता अधिवेशन में भी फहराया गया। इस झंडे के नीचे बंग-भंग विरोधी आंदोलन और स्वदेशी आंदोलन दोनों तीव्र गति से चल पड़े। इनके आगे अंग्रेज़ों को झुकना पड़ा था।

विदेश में रहने वाले भारतवासियों में भी राष्ट्रीय स्वाधीनता के प्रति तीव्र भावना जाग गई थी। इसके फलस्वरूप यूरोप में अध्ययन करने वाले भारतीय विद्यार्थियों के मन में राष्ट्रीय ध्वज के निर्माण की बेचैनी होती रहती थी। वे स्वाधीन राष्ट्र के नागरिक होने का गौरव प्राप्त करना चाहते थे। उनका स्वाभिमान देश की पराधीनता से आहत होता था। यूरोप में कुछेक भारतीय विद्यार्थियों ने राष्ट्रीय ध्वज बनाने का संकल्प लिया। विदेश में भारत के राष्ट्रीय ध्वज को पहली बार फहराने का श्रेय श्रीमती भीखाईजी कामा को दिया जाता है। भीखाईजी कामा के बारे में अंग्रेज़ सरकार के गुप्तचर विभाग ने जो रपट बनाई थी, वह राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित है। उसके अनुसार 22 अगस्त, 1907 को जर्मनी के स्टुटगार्ट नगर में आयोजित दूसरे इंटरनेशनल सोशलिस्ट कांग्रेस में विभिन्न देशों से एकत्र हज़ारों प्रतिनिधियों के सामने भीखाईजी कामा ने भाषण दिया और अंत में हरे, सुनहरे एवं लाल रंगों वाला एक तिरंगा झंडा फहराया। उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए अपील करते हुए कहा, "यह भारत की आज़ादी का झंडा है। देखिए, इसने जन्म ले लिया है। शहीद भारतीय युवाओं के रक्त ने इसे पवित्र किया है।" इसके बाद उन्होंने यह नियम बना लिया कि वे जब कभी भाषण देंगी, वह झंडा मंच पर या मंच के पीछे की दीवार पर लगा होगा।



भीखाईजी कामा का ध्वज – 1907

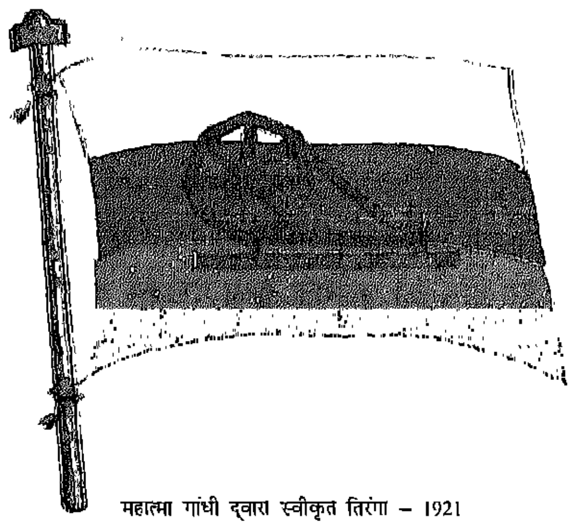
इस तिरंगे झंडे को सन 1906 के तिरंगे झंडे से मिलता-जुलता बनाया गया था। इसमें भी ऊपर की हरी पट्टी पर आठ कमल बनाए गए थे, पर उनकी आकृति में अंतर था। वंदेमातरम् के लेखन और सूर्य-चंद्र के चिह्नों में भी थोड़ा अंतर था। इस झंडे के निर्माण में भीखाईजी कामा को वीर सावरकर और क्रांतिकारी नेता श्यामजी कृष्ण वर्मा के परामर्श और सहयोग मिले थे। भीखाईजी कामा के झंडे से अलग भारतीय क्रांतिकारियों ने जर्मनी तथा अमेरिका में भी राष्ट्रीय ध्वज बनाए थे, जिससे उनका राष्ट्रप्रेम और स्वतंत्रता का दृढ़ संकल्प उजागर होता है।

जब 1917 में देश की स्वतंत्रता का संघर्ष तेज़ होने लगा, बाल गंगाधर तिलक और डॉ. एनी बेसेंट ने एक नए झंडे की रूपरेखा बनाई। इसमें बारी-बारी से पाँच लाल और चार हरी समतल पट्टियाँ बनी थीं। इस झंडे पर सप्तऋषि के प्रतीक सात तारे अंकित थे। इस झंडे में बाईं ओर ऊपर के चौथाई हिस्से में यूनियन जैक और दाहिनी ओर ऊपर के चौथाई हिस्से में अर्धचंद्र तथा सूर्य की आकृतियाँ अंकित थीं। सन 1917 में एनी बेसेंट की अध्यक्षता में संपन्न हुए कांग्रेस के कोलकाता अधिवेशन में यह झंडा फहराया गया था। इस झंडे में यूनियन जैक को स्थान देना राजनैतिक समझौते का सूचक था। उसमें अंग्रेज़ी दासता की गंध महसूस होती थी। इसी कारण इसे लोकप्रियता नहीं मिल पाई।


डॉ. एनी बेसेंट का ध्वज – 1917

आंध्र प्रदेश के पिंगले वेंकय्या नाम के एक युवक ने सन 1916 के आसपास भारत के राष्ट्रीय झंडे के निर्माण और प्रचार-प्रसार के लिए 'भारतीय राष्ट्रीय झंडा

मिशन' बनाया और उसकी शाखाएँ देश के कई भागों में खोली गईं। 'भारत के लिए एक राष्ट्रीय झंडा' शीर्षक से पिंगले वेंकय्या ने एक पुस्तक भी लिखी थी। 1921 में महात्मा गांधी ने पिंगले वेंकय्या से ऐसा राष्ट्रीय झंडा बनाने के लिए कहा जिसमें लाल और हरे रंग की दो पट्टियाँ हों और उन पर एक चरखा अंकित हो। तब लाल और हरे रंग की दो पट्टियों वाला झंडा निर्मित हुआ। इसमें लाल रंग हिंदुओं के लिए और हरा रंग मुसलमानों के लिए प्रतीक रूप में रखे गए थे। पर, गांधी जी ने इस झंडे पर फिर से



महात्मा गांधी द्वारा स्वीकृत तिरंगा – 1921

विचार किया। उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य धर्मावलंबियों को भी प्रतिनिधित्व देने के लिए इस झंडे में एक सफ़ेद पट्टी रखवाई। अब इस तिरंगे झंडे में ऊपर सफ़ेद, बीच में हरी और नीचे लाल रंग की पट्टियाँ थीं। गांधी जी इस झंडे से भारत में रहने वाले सभी धर्मावलंबियों में एकता का बोध जगाना चाहते थे।

आत्मनिर्भरता के प्रतीक रूप में चरखे की आकृति को राष्ट्रीय ध्वज पर भी रखने की चर्चा चल रही थी। सन 1921 में जब अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की वार्षिक बैठक अहमदाबाद में संपन्न हुई, तब पहली बार चरखे की बड़ी आकृति वाला तिरंगा झंडा फहराया गया। कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में 31 दिसंबर, 1929 को रावी के तट पर भी यही झंडा फहराया गया था। इस ऐतिहासिक अधिवेशन में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य का अपना लक्ष्य घोषित किया था। इसी झंडे के नीचे 26 जनवरी, 1930 को हज़ारों देशवासियों ने स्वतंत्रता की शपथ ली थी। जब 12 मार्च, 1930 को गांधी जी नमक कानून तोड़ने के लिए दांडी ग्राम की यात्रा पर निकले, लोग यही तिरंगा लेकर सड़क के दोनों ओर खड़े हुए।

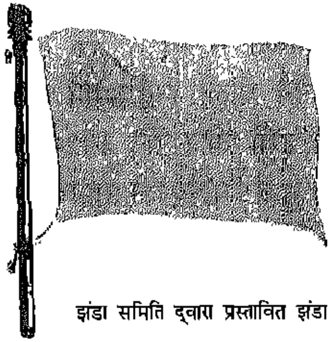
असहयोग आंदोलन में इस झंडे की लोकप्रियता बढ़ गई। भारत की स्वतंत्रता के परिचायक तिरंगे झंडे की लोकप्रियता से अंग्रेज़ी शासन कुपित हो उठा। अंग्रेज़ इस झंडे को फहराता हुआ देखकर आपे से बाहर हो जाते थे। अंग्रेज़ों की इस परेशानी से देशवासियों का उत्साह और भी बढ़ गया। अंग्रेज़ों की आपत्ति और प्रतिक्रिया से इसके प्रति जन-जन की निष्ठा गहरी होती गई। देश के सामान्य जन भी यह जान गए कि राष्ट्रीय ध्वज स्वतंत्रता का परिचायक है, यह बिना किसी आवाज़ के भी आज़ादी की बुलंद आवाज़ है।

सन 1921 से 1931 तक सभी सत्याग्रह आंदोलनों में तिरंगे झंडे का प्रयोग होता रहा। अंग्रेज़ सरकार इस पर जितना ही कड़ा प्रतिबंध लगाती और अपना दमन-चक्र तेज़ करती, स्वतंत्रता-सेनानी उस दमन-चक्र का उतने ही अदम्य साहस तथा धैर्य से सामना करते।

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है ज़ोर कितना बाज़ु-ए-कातिल में है।

स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देने वाली इस प्रकार की पंक्तियाँ उनके जीवन का ध्येय बन चुकी थीं। इसी बीच सन 1924 में उत्तर प्रदेश के स्वाधीनता सेनानी श्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' ने सुप्रसिद्ध ध्वज-वंदना 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा' की रचना की। इस ध्वज-वंदना को अपरिहार्य रूप से इस झंडे के साथ गाया जाता था। इस गीत की एक पंक्ति 'इसकी शान न जाने पाए, चाहे जान भले ही जाए' – तो स्वतंत्रता-आंदोलन के समय बाल-युवा-वृद्ध सभी के कंठ से गूँजती रहती थी।

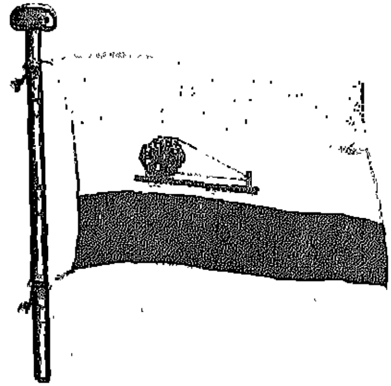
तिरंगे झंडे की लोकप्रियता अत्यंत बढ़ चुकी थी, फिर भी कुछ लोग सभी समुदायों की भागीदारी के आधार पर राष्ट्रीय ध्वज को बनाने का आग्रह कर रहे थे। कांग्रेस के बेलगाँव अधिवेशन के अवसर पर झंडे में भगवा रंग रखने का सुझाव दिया गया था क्योंकि इस रंग से त्याग की भावना व्यक्त होती है और यह योगियों – संन्यासियों, फकीरों – दरवेशों का प्रिय रंग माना जाता है। सन 1929 में एक शिष्टमंडल ने गांधी जी से मिलकर इस विषय में बातचीत की थी। अप्रैल 1931 को कराची में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में एक 'झंडा समिति' का गठन किया गया। इस समिति के संयोजक डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमय्या थे। पं. जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, मास्टर तारा सिंह, डॉ. बी. हार्डिकर और डी.बी. कालेलकर इसके सदस्य थे। झंडे के विषय में उठी आपत्तियों पर विचार करना और नए डिजाइन का सुझाव देना इस समिति की ज़िम्मेदारी थी। इस समिति ने


झंडा समिति द्वारा प्रस्तावित झंडा

भगवा रंग के एक ध्वज को राष्ट्रीय ध्वज के रूप में अपनाने का सुझाव दिया था, जिसके एक कोने में चरखा अंकित था। इस झंडे को 5 और 6 अगस्त 1931 को मुंबई में संपन्न हुई कांग्रेस की कार्य समिति की बैठक में विचार के लिए रखा गया। कार्य समिति ने नए डिजाइन को पसंद किया। किंतु कांग्रेस के आंदोलनों और अधिवेशनों के माध्यम से तिरंगे झंडे की लोकप्रियता अधिक हो जाने के कारण तिरंगा झंडा ही रखने की सहमति बन पाई।

डॉ. सीतारमय्या ने एक प्रश्नावली का प्रारूप तैयार कर पं. नेहरू के पास सुझाव के लिए भेजा था। नेहरू जी ने तिरंगे में भगवा रंग को रखने का सुझाव दिया। उन्होंने डॉ. सीतारमय्या को लिखा था – "हमें यह पूरी तरह स्पष्ट कर देना चाहिए कि हमारे झंडे का आधार सांप्रदायिक नहीं है। संभवत: कुछ परिवर्तन जरूरी है। लेकिन यह परिवर्तन करने के क्रम में वर्तमान झंडे में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं करना चाहिए। मैं सोचता हूँ कि सफ़ेद रंग की जगह वसंती या हलका भगवा रंग होना चाहिए। यह एक पुराना भारतीय रंग है तथा इतिहास में यह त्याग से संबद्ध है। इसके अतिरिक्त भारत की महिलाओं ने यह रंग पसंद किया है और इस रंग को रखने से उनके प्रति सम्मान का भाव प्रकट होगा।"

राष्ट्रीय झंडा समिति ने सभी सुझावों पर विचार किया और अंतत: उसने लोकप्रिय झंडे में कम-से-कम फेर-बदल करने का सुझाव दिया। उसकी सिफ़ारिश थी कि राष्ट्रीय ध्वज पहले जैसा तिरंगा होगा। लेकिन रंगों



कांग्रेस की कार्य समिति द्वारा स्वीकृत ध्वज – 1931

के क्रम में पहले भगवा आएगा, फिर सफ़ेद और नीचे हरा होगा। सफ़ेद पट्टी के बीच गहरे नीले रंग का चरखा अंकित होगा। रंगों का कोई सांप्रदायिक महत्त्व नहीं होगा। भगवा साहस और त्याग का, सफ़ेद शांति और सत्य का, हरा हरी-भरी फसलों और संपन्नता का तथा चरखा जनता की आशा और उद्यम का प्रतिनिधित्व करेगा। यह प्रस्ताव भारी बहुमत से स्वीकृत हो गया। 30 अगस्त, 1931 को झंडा दिवस के रूप में मनाने और इस दिन देश भर में नया झंडा फहराने की घोषणा की गई। यही झंडा स्वतंत्रता प्राप्ति की पूर्व संध्या तक राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम का प्रतीक बना रहा।

जब लार्ड लुइ माउंटबेटन ने 3 जून, 1947 को ब्रिटिश सरकार के निर्णय के अनुसार भारत को स्वतंत्र कर देने की घोषणा की, तब स्वतंत्र भारत के ध्वज के विषय में सुझाव देने के लिए 23 जून, 1947 को एक अस्थायी समिति बनाई गई। इसके निर्णयों के आधार पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के झंडे में ऐसा परिवर्तन किया गया जो सभी दलों तथा संप्रदायों



स्वतंत्र भारत का राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा – 1947

को स्वीकार हो। इस झंडे के केंद्र में सम्राट अशोक के सारनाथ स्तंभ पर अंकित चक्र की प्रतिकृति को सफ़ेद पट्टी पर नीले रंग में अंकित किया गया। यह चक्र हमारी गतिशीलता तथा प्रगति के पथ पर सतत अग्रसर होते रहने के हमारे संकल्प का प्रतीक है। इस प्रकार नए तिरंगे झंडे को स्वतंत्र भारत का राष्ट्रीय ध्वज होने का गौरव प्राप्त हुआ।

22 जुलाई, 1947 को संविधान सभा की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए इसे प्रस्तुत किया गया। पं. नेहरू ने प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए भारत के राष्ट्रीय ध्वज का विवरण दिया। उन्होंने कहा था, "मेरी ही तरह इस सदन के सदस्यों को याद होगा कि किस तरह इस झंडे पर हमें सिर्फ गौरव ही नहीं होता था और हम उत्साह से ही नहीं भर उठते थे, बल्कि हमारी रगों में सनसनी होने लगती थी और जब हम निराश होते थे तो उसको देख कर आगे बढ़ने का उत्साह बढ़ जाता था।"

14-15 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि को भारत जब पूर्णतः स्वतंत्र हुआ और संविधान सभा ने राष्ट्र की बागडोर सँभाल ली, तब श्रीमती हंसा मेहता ने अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद को एक नया तिरंगा झंडा भेंट करते हुए कहा–"यह उचित ही है कि इस महान सदन पर जो पहला झंडा फहराया जाने वाला है, वह भारत की महिलाओं का उपहार है।" अगले दिन 15 अगस्त, 1947 के शपथ-ग्रहण समारोह के बाद राष्ट्रपति भवन के ध्वज-दंड पर हमारा यह राष्ट्रीय ध्वज फहरा उठा।

इस राष्ट्रीय ध्वज को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 16 अगस्त, 1947 को प्रातः 8.30 बजे लाल किले पर फहराया। लाल किले पर झंडा फहराने का वह स्वप्न साकार हो उठा जिसे नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने देखा था और इसी के साथ भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत स्वतंत्रता-सेनानियों की कामना भी पूरी हुई। उनका बलिदान सार्थक सिद्ध हुआ। चक्रयुक्त यही राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा हमारी स्वतंत्रता, संप्रभुता और अस्मिता का परिचायक बन राष्ट्र के मुक्त गगन में लहराता हुआ हमें गौरव प्रदान करता है।

– जगमोहन सिंह राजपूत

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. किसी भी देश के लिए राष्ट्रीय ध्वज का क्या महत्त्व होता है?
2. अदम्य शौर्य और राष्ट्रप्रेम को प्रकट करने वाला वह कौन-सा उदाहरण सामने आया जिसमें सात युवक शहीद हो गए?
3. कौन-सी महिला मलकटरी नामक स्थान पर झंडा फहराते हुए शहीद हो गई थी?
4. राष्ट्रीय ध्वज की विकास-यात्रा में वंदेमातरम् कितने प्रकार से लिखे हुए मिलते हैं?
5. एनी बेसेंट द्वारा बनाए गए झंडे को लोकप्रियता क्यों नहीं मिल पाई?

(ख) लिखित

1. किसके द्वारा बनाए गए झंडे में वज्र का चिह्न अंकित था? उसकी अन्य विशेषताएँ क्या थीं?
2. पारसी बागान कोलकाता में आयोजित रैली में किस प्रकार का तिरंगा झंडा फहराया गया था?
3. राष्ट्रीय झंडा समिति ने किस प्रकार के झंडे का सुझाव दिया और इस सुझाव के कारण तिरंगे झंडे में कौन-सा परिवर्तन आया?
4. राष्ट्रीय ध्वज के निर्माण के संबंध में नेहरू जी ने क्या सुझाव दिया और क्यों?
5. पाठ में वर्णित उन प्रसंगों का उल्लेख कीजिए जिनसे पता चलता है कि आज़ादी के दीवानों ने अपनी जान की परवाह न करते हुए झंडे की शान बनाए रखी?
6. राष्ट्रीय ध्वज बिना किसी आवाज़ के भी आज़ादी की बुलंद आवाज़ कैसे बन गया?
7. "राष्ट्रीय ध्वज के विकास की कहानी हमारे स्वतंत्रता संग्राम की कहानी है।" टिप्पणी कीजिए।

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों को बोलकर पढ़िए –
   स्वतंत्रता, संप्रभुता, अस्मिता, शौर्य, अभियान, अधिवेशन, साम्राज्य, स्वाभिमान, क्रांतिकारी, लोकप्रियता, धर्मावलंबी, ज़िम्मेदारी, उद्यम, परिचायक, अदम्य।
2. आप जानते हैं कि संज्ञा के तीन भेद होते हैं–व्यक्तिवाचक, जातिवाचक और भाववाचक संज्ञा। निम्नलिखित शब्दों के संज्ञा रूप छाँटते हुए उनके नाम बताइए – गौरव, ध्वज, राष्ट्र, अस्मिता, कोलकाता, स्वामी विवेकानंद, स्वतंत्रता, तमिलनाडु, अधिवेशन, भगिनी निवेदिता, संप्रभुता, शिष्या, सेनानी, लोकप्रियता।
3. निम्नलिखित वाक्यों को उदाहरण के अनुसार बदलिए –
   उदाहरण : इनके आगे अंग्रेज़ **झुके** थे।
   ⇒ इनके आगे अंग्रेज़ों को **झुकना पड़ा** था।
   (क) अंग्रेज़ों को अपनी शक्ति दिखाने के लिए सेनानियों ने झंडा **फहराया** था।
   (ख) न चाहते हुए भी अंग्रेज़ों पर क्रांतिकारियों ने गोली **चलाई** थी।
   (ग) 15 अगस्त 1947 को अंग्रेज़ों ने भारत **छोड़ा** था।
   (घ) बुखार के कारण उसने दवाई **ली** थी।
   (ङ) देश की आज़ादी के लिए अनेक वीरों ने अपने प्राण **दिए** थे।
4. निम्नलिखित वाक्यों में उचित विराम-चिह्न लगाइए –
   (क) यह स्वतंत्रता-आंदोलन के समय बाल-युवा-वृद्ध सभी के कंठ से गूँजती रहती थी
   (ख) अगस्त सन 1942 के अंग्रेज़ों भारत छोड़ो नामक स्वतंत्रता आंदोलन में एक अदम्य शौर्य और राष्ट्रप्रेम का उदाहरण सामने आया
   (ग) कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में 31 दिसंबर 1929 को रावी के तट पर भी यही झंडा फहराया गया था
   (घ) इसमें बारी-बारी से पाँच लाल और चार हरी समतल पट्टियाँ बनी थीं
   (ङ) उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए अपील करते हुए कहा यह भारत की आज़ादी का झंडा है देखिए इसने जन्म ले लिया है शहीद भारतीय युवाओं के रक्त से इसे पवित्र किया है
   (च) शाबाश तुम पास हो गए

योग्यता-विस्तार

1. प्रस्तुत पाठ में विजयी विश्व तिरंगा .... और 'सरफ़रोशी की तमन्ना .... गीतों का उल्लेख हुआ है। इन गीतों को समग्र रूप में याद कीजिए और विशिष्ट अवसरों पर विद्यालय में सुनाइए।
2. बाल गंगाधर तिलक, एनी बेसेंट, भीखाईजी कामा, वीर सावरकर, श्यामजी कृष्ण वर्मा जैसे स्वतंत्रता सेनानियों के विषय में जानकारी एकत्र कर कक्षा की भित्ति पत्रिका पर प्रस्तुत कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

संप्रभुता – सर्वसत्ता धारण का भाव (सोवरेंटी)
अस्मिता – अस्तित्व की पहचान, अपनी पहचान
सन्निहित – मिला होना
बर्बरता – जंगलीपन, उजड्डपन
ज्वलंत – चमकदार, प्रकाशमान
रोमांचक – रोमांच उत्पन्न करने वाला
अभिलेखागार – जहाँ पुराने सरकारी दस्तावेज़ सुरक्षित रखे जाते हैं
दमन चक्र – दमन का चक्र, विरोध को बलपूर्वक दबाना
सरफ़रोशी – आत्म बलिदान, सिर बेचने की इच्छा
बाजु-ए-कातिल – हत्यारे की भुजा
तमन्ना – इच्छा, कामना
प्रतिकृति – नकल, चित्र
लक्ष्य – उद्देश्य
कुपित – नाराज़
सतत – निरंतर
अग्रसर – आगे बढ़ना

6. अपराजिता

(प्रस्तुत पाठ में एक ऐसी विकलांग महिला का परिचय मिलता है जिसने अपने अद्भुत धैर्य, दृढ़ इच्छाशक्ति और निरंतर साधना के बल पर अपनी विकलांगता पर विजय प्राप्त कर ली है। विकट एवं विषम परिस्थितियों में अपराजिता बनी रहने वाली इस महिला की जीवन-गाथा निश्चय ही कठिनाइयों से जूझने और जीवन की चुनौतियों का साहसपूर्ण सामना करने की प्रेरणा प्रदान करती है।)

कभी-कभी अचानक ही विधाता हमें ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व से मिला देता है, जिसे देख स्वयं अपने जीवन की रिक्तता बहुत छोटी लगने लगती है। हमें तब लगता है कि भले ही उस अंतर्यामी ने हमें जीवन में कभी अकस्मात अकारण ही दंडित कर दिया हो किंतु हमारे किसी अंग को हमसे विच्छिन्न कर हमें उससे वंचित तो नहीं किया। फिर भी हममें से कौन ऐसा मानव है जो अपनी विपत्ति के कठिन क्षणों में विधाता को दोषी नहीं ठहराता। मैंने अभी पिछले ही महीने, एक ऐसी अभिशप्त काया देखी है, जिसे विधाता ने कठोरतम दंड दिया है, किंतु उसे वह नतमस्तक आनंदी मुद्रा में झेल रही है, विधाता को कोसकर नहीं।

उसकी कोठी का अहाता एकदम हमारे बँगले के अहाते से जुड़ा था। अपनी शानदार कोठी में उसे पहली बार कार से उतरते देखा, तो आश्चर्य से देखती ही रह गई। कार का द्वार खुला, एक प्रौढ़ा ने उतरकर पिछली सीट से एक व्हील चेयर निकाल कर सामने रख दी और भीतर चली गई।

दूसरे ही क्षण, धीरे-धीरे बिना किसी सहारे के, कार से एक युवती ने अपने निर्जीव निचले धड़ को बड़ी दक्षता से नीचे उतारा, फिर बैसाखियों से ही व्हील चेयर तक पहुँच उसमें बैठ गई और बड़ी तटस्थता से उसे स्वयं चलाती कोठी के भीतर चली गई। मैं फिर नित्य नियत समय पर उसका यह विचित्र आवागमन देखती और आश्चर्यचकित रह जाती – ठीक जैसे कोई मशीन बटन खटखटाती अपना काम किए चली जा रही हो।

धीरे-धीरे मेरा उससे परिचय हुआ। कहानी सुनी तो दंग रह गई। नियति के प्रत्येक कठोर आघात को अति अमानवीय धैर्य एवं साहस से झेलती वह बित्ते-भर की लड़की मुझे किसी देवांगना से कम नहीं लगी। मैं चाहती हूँ कि मेरी पंक्तियों को उदास आँखों वाला वह गोरा, उजले वस्त्रों से सज्जित लखनऊ का मेधावी युवक भी पढ़े, जिसे मैंने कुछ माह पूर्व अपनी बहन के यहाँ देखा था। वह आई. ए. एस. की परीक्षा देने इलाहाबाद गया। लौटते समय किसी स्टेशन पर चाय लेने उतरा कि गाड़ी चल पड़ी। चलती ट्रेन में हाथ के कुल्हड़ सहित चढ़ने के प्रयास में गिरा और पहिए के नीचे हाथ पड़ गया। प्राण तो बच गए, पर दायाँ हाथ चला गया। उसी विच्छिन्न भुजा के साथ-साथ धीरे-धीरे वह मानसिक संतुलन भी खो बैठा। पहले दुख भुलाने के लिए नशे की गोलियाँ खाने लगा और अब नूर मंज़िल की शरण गही है। केवल एक हाथ खोकर ही उसने हथियार डाल दिए। इधर चंद्रा, जिसका निचला धड़ है निष्प्राण मांसपिंड मात्र, सदा उत्फुल्ल है, चेहरे पर विषाद की एक रेखा भी नहीं, बुद्धिदीप्त आँखों में अदम्य उत्साह, प्रतिपल-प्रतिक्षण भरपूर उत्कट जिजीविषा और फिर कैसी-कैसी महत्त्वाकांक्षाएँ।

"मैडम, आप लखनऊ जाते ही क्या मुझे ड्रग रिसर्च इंस्टीट्यूट से पूछकर यह बताएँगी कि क्या वहाँ आने पर मेरे विषय माइक्रोबायोलॉजी से संबंधित कुछ सामग्री मिल सकेगी?"

"मैडम आप कह रही थीं कि आपके दामाद हवाई के ईस्ट-वेस्ट सेंटर में हैं। क्या आप उन्हें मेरा बायोडाटा भेजकर पूछ सकेंगी कि मुझे वहाँ की कोई फ़ैलोशिप मिल सकती है?"

यहाँ कभी सामान्य-सी हड्डी टूटने पर या पैर में मोच आ जाने पर ही प्राण ऐसे कंठगत हो जाते हैं जैसे विपत्ति का आकाश ही सिर पर टूट पड़ा है। और इधर लड़की है कि पूरा निचला धड़ सुन्न है, फिर भी बोटी-बोटी फड़क रही है। आजकल वह आई. आई. टी. मद्रास में काम कर रही है।

जन्म के अठारहवें महीने में ही जिसकी गरदन के नीचे का पूरा शरीर पोलियो ने निर्जीव कर दिया हो, उसने किस अद्भुत साहस से नियति को अँगूठा दिखा अपनी थीसिस पर डॉक्टरेट ली होगी।

"मैडम, मैं चाहती हूँ कि कोई मुझे सामान्य-सा सहारा भी न दे। आप तो देखती हैं, मेरी माँ को मेरी कार चलानी पड़ती है। मैंने इसी से एक ऐसी कार का नक्शा बनाकर दिया है, जिससे मैं अपने पैरों के निर्जीव अस्तित्व को भी सजीव बना दूँगी। यह देखिए, मैंने अपनी प्रयोगशाला में अपना संचालन कैसा सुगम बना लिया है। मैं अपना सारा काम अब स्वयं निबटा लेती हूँ।"

उसने मुझे तस्वीरें दिखाईं। समस्त सामग्री उसके हाथों की पहुँच तक ऐसे धरी थी कि निचला धड़ ऊपर उठाए बिना ही वह मनचाही सामग्री मेज़ पर से उतार सकती थी। किंतु उसकी आज की इस पटुता के पीछे

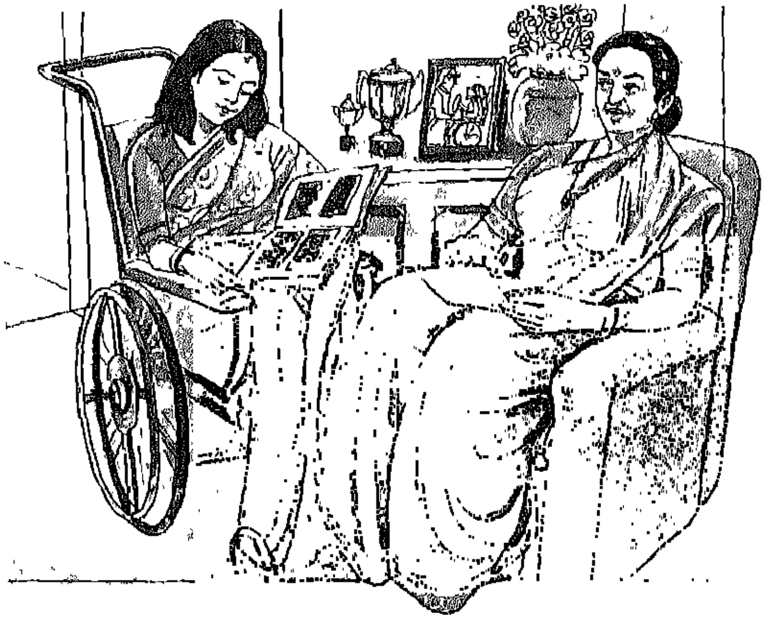
है एक सुदीर्घ कठिन अभ्यास की यातनाप्रद भूमिका। स्वयं डॉ. चंद्रा के प्रोफ़ेसर के शब्दों में, "हमने आज तक दो व्यक्तियों द्वारा सम्मिलित रूप में नोबल पुरस्कार पाने के ही विषय में सुना था, किंतु आज हम शायद पहली बार इस पी-एच.डी. के विषय में भी कह सकते हैं। देखा जाए तो यह डॉक्टरेट भी संयुक्त रूप से मिलनी चाहिए, डॉ. चंद्रा और उनकी अद्भुत साहसी जननी श्रीमती सुब्रह्मण्यम् को। पच्चीस वर्ष तक इस सहिष्णु महिला ने पुत्री के साथ-साथ कैसी कठिन साधना की और इस साधना का सुखद अंत हुआ 1976 में, जब चंद्रा को डॉक्टरेट मिली माइक्रोबायोलॉजी में। अपंग स्त्री-पुरुषों में, इस विषय में डॉक्टरेट पाने वाली डॉ. चंद्रा प्रथम भारतीय हैं। जब इसे सामान्य ज्वर के चौथे दिन पक्षाघात हुआ तो गरदन के नीचे इसका सर्वांग अचल हो गया। भयभीत होकर हमने इसे बड़े-से-बड़े डॉक्टर को दिखाया। सबने एक स्वर में कहा आप व्यर्थ पैसा बरबाद मत कीजिए। आपकी पुत्री जीवनभर केवल गरदन ही हिला पाएगी। संसार की कोई भी शक्ति इसे रोगमुक्त नहीं कर सकती।"

सहसा श्रीमती सुब्रह्मण्यम् का कंठ अवरुद्ध हो गया, फिर वे धीमे स्वर में मुझे बताने लगीं, "मेरे गर्भ में तब इसका भाई आ गया था। इसके भयानक अभिशाप के बावजूद मैंने कभी विधाता से यह नहीं कहा कि प्रभो, इसे उठा लो, इसके इस जीवन से तो मौत भली है। मैं निरंतर इसके जीवन की भीख ही माँगती रही। केवल सिर हिलाकर यह इधर-उधर देख-भर सकती थी। न हाथों में गति थी, न पैरों में, फिर भी मैंने आशा नहीं छोड़ी। एक आर्थोपैडिक सर्जन की बड़ी ख्याति सुनी थी, वहीं ले गई।

एक वर्ष तक कष्टसाध्य उपचार चला और एक दिन स्वयं ही इसके ऊपरी धड़ में गति आ गई, हाथ हिलने लगे, नन्हीं उँगलियाँ मुझे बुलाने लगीं। निर्जीव धड़ को मैंने सहारा देकर बैठना सिखा दिया। पाँच वर्ष की हुई, तो मैं ही इसका स्कूल बनी। मेधावी पुत्री की विलक्षण बुद्धि ने फिर मुझे चमत्कृत कर दिया, सरस्वती स्वयं ही जैसे आकर जिह्वाग्र में बैठ गई थीं। बंगलौर के प्रसिद्ध माउंट कारमेल में उसे प्रवेश दिलाने में मुझे कॉन्वेंट द्वार पर लगभग धरना ही देना पड़ा।

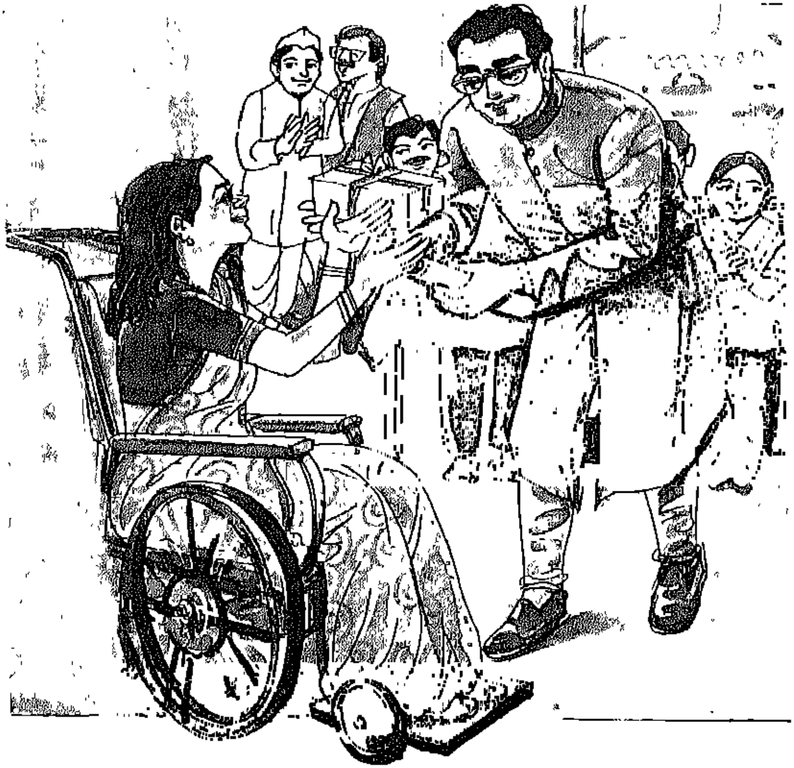
"नहीं मिसेज सुब्रह्मण्यम्", मदर ने कहा, "हमें आपसे पूरी सहानुभूति है, पर आप ही सोचिए आपकी पुत्री की व्हील चेयर लेकर कौन पूरे क्लास-रूम में घुमाता फिरेगा?"

"आप चिंता न करें मदर, मैं हमेशा उसके साथ रहूँगी।" और फिर पूरी कक्षाओं में अपंग पुत्री की कुरसी की परिक्रमा मैं स्वयं कराती। वे पीरियड-दर-पीरियड उसके पीछे खड़ी रहतीं। प्रत्येक परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर चंद्रा ने स्वर्ण पदक जीते। बी.एस-सी. किया, प्राणिशास्त्र में, एम.एस-सी. में प्रथम स्थान प्राप्त किया और बंगलौर के प्रख्यात इंस्टीट्यूट ऑफ़ साइंस में अपने लिए स्पेशल सीट अर्जित की। केवल अपनी निष्ठा, धैर्य एवं साहस से पाँच वर्ष तक प्रोफ़ेसर सेठना के निर्देशन में शोधकार्य किया। इसी बीच माता-पिता ने पेंसिलवानिया से व्हील चेयर मँगवा दी, जिसे डॉ. चंद्रा स्वयं चलाती हुई पूरी प्रयोगशाला में बड़ी सुगमता से घूम सकती थी। लैदर जैकेट के कठिन जिरह-बख्तर में कसी उस हँसमुख लड़की को देख मुझे युद्ध-क्षेत्र में डटे राणा साँगा का ही स्मरण हो आता था। क्षत-विक्षत शरीर में असंख्य घाव आभामंडित भव्य मुद्रा।



"मैडम, आप तो लिखती हैं, मेरी ये कविताएँ देखिए। कुछ दम है क्या इनमें?"

मैंने जब वे कविताएँ देखीं, तो आँखें भर आईं। जो उदासी उसके चेहरे पर कभी नहीं आने पाई, वह अनजाने में उसकी कविता में छलक आई थी। फिर उसने अपनी कढ़ाई-बुनाई के सुंदर नमूने दिखाए। लड़की के दोनों हाथ जैसे दोनों पैरों का भी काम करते हों, निरंतर मशीनी खटखट में चलते रहते हैं। जर्मन भाषा में माता-पुत्री दोनों ने मैक्समूलर भवन से विशेष योग्यता सहित परीक्षा उत्तीर्ण की। गर्ल गाइड में राष्ट्रपति का स्वर्ण कार्ड पाने वाली वह प्रथम अपंग बालिका थी। यही नहीं, भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत दोनों में उसकी समान रुचि है। अपने अलबम को अपनी



निर्जीव टाँगों पर रख वह मुझे अपने चित्र दिखाने लगी। पुरस्कार ग्रहण करती डॉ. चंद्रा, प्रधानमंत्री के साथ मुसकराती खड़ी डॉ. चंद्रा, राष्ट्रपति को सलामी देती बालिका चंद्रा और व्हील चेयर में लैदर जैकेट में जकड़ी बैसाखियों का सहारा लेकर अपनी डॉक्टरेट ग्रहण करती डॉ. चंद्रा।

"मेरी बड़ी इच्छा थी, मैं डॉक्टर बनूँ। मैं अपंग डॉ. मेरी वर्गीज़ के सफल जीवन की कहानी पढ़ चुकी थी। परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने पर भी मुझे मेडिकल में प्रवेश नहीं मिला। कहा गया मेरा निचला

धड़ निर्जीव है, मैं एक सफल शल्य-चिकित्सक नहीं बन पाऊँगी।" किंतु डॉ. चंद्रा के प्रोफ़ेसर के शब्दों में, "मुझे यह कहने में रंचमात्र भी हिचकिचाहट नहीं होती कि डॉ. चंद्रा ने विज्ञान की प्रगति में महान योगदान दिया है। चिकित्सा ने जो खोया है, वह विज्ञान ने पाया।"

चंद्रा के अलबम के अंतिम पृष्ठ पर उसकी जननी का बड़ा-सा चित्र जिसमें वे जे.सी. बंगलौर द्वारा प्रदत्त एक विशिष्ट पुरस्कार ग्रहण कर रही हैं – 'वीर जननी' का पुरस्कार। बहुत बड़ी-बड़ी उदास आँखें, जिनमें माँ की व्यथा भी है और पुत्री की भी, अपने सारे सुख त्यागकर नित्य छाया बनी पुत्री की पहिया-लगी कुरसी के पीछे चक्र-सी घूमती जननी, नाक के दोनों ओर हीरे की दो जगमगाती लौंगों, अधरों पर विजय का उल्लास, जूड़े में पुष्पवेणी। मेरे कानों में उस अद्‌भुत साहसी जननी शारदा सुब्रह्मण्यम् के शब्द अभी भी जैसे गूँज रहे हैं, "ईश्वर सब द्वार एक साथ बंद नहीं करता। यदि एक द्वार बंद करता भी है, तो दूसरा द्वार खोल भी देता है।"

– **शिवानी**

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. लेखिका ने जब पहली बार डॉ. चंद्रा को कार से उतरते देखा तो आश्चर्य से क्यों देखती रह गई?

2. 'अभिशप्त काया' से लेखिका का क्या आशय है?
3. चिकित्सा-क्षेत्र की हानि विज्ञान का लाभ कैसे बन गई?
4. डॉ. चंद्रा ने विज्ञान के अतिरिक्त और किन-किन क्षेत्रों में उपलब्धियाँ प्राप्त कीं?
5. "मैडम मैं चाहती हूँ मुझे कोई सामान्य-सा सहारा भी न दे" – इस कथन से डॉ. चंद्रा के चरित्र की कौन-सी विशेषता उभरती है?
6. डॉ. चंद्रा की कविताएँ देखकर लेखिका की आँखें क्यों भर आईं?

(ख) लिखित

1. हमें कब अपने जीवन की रिक्तता बहुत छोटी लगने लगती है?
2. लेखिका यह क्यों चाहती थी कि लखनऊ का युवक डॉ. चंद्रा के संबंध में लिखी उनकी पंक्तियों को पढ़े?
3. आशय स्पष्ट कीजिए –
   (क) वह बित्ते-भर की लड़की मुझे किसी देवांगना से कम नहीं लगी।
   (ख) बुद्धिदीप्त आँखों में अदम्य उत्साह, प्रतिपल-प्रतिक्षण भरपूर उत्कट जिजीविषा और फिर कैसी-कैसी महत्त्वाकांक्षाएँ।
4. डॉ. चंद्रा की कार्यकुशलता को लेखिका ने सुदीर्घ कठिन अभ्यास की यातनाप्रद भूमिका क्यों कहा?
5. सिद्ध कीजिए कि डॉ. चंद्रा की माता वास्तव में 'वीर जननी पुरस्कार' की हकदार थीं?
6. लेखिका ने डॉ. चंद्रा के लिए 'अपराजिता' विशेषण क्यों चुना है? आपके विचार में डॉ चंद्रा के व्यक्तित्व के लिए अन्य कौन-सा विशेषण उपयुक्त हो सकता है और क्यों?

भाषा-अध्ययन

1. हिंदी में अंग्रेज़ी की स्वर ध्वनि 'ऑ' का आगम हुआ। यद्यपि इसका उच्चारण हिंदी की ध्वनि 'औ' की भाँति होता है परंतु वास्तव में यह – **'ऑ'** है **'औ'** नहीं। इसमें मुख को थोड़ा गोलाकर करना पड़ता है; जैसे – काल (समय), कॉल (बुलावा), कौल (शपथ)। तीनों के उच्चारण और अर्थ में अंतर दिखाई देता है।

निम्नलिखित शब्दों को बोलकर पढ़िए –

डॉक्टर, कॉलेज, बॉल, डॉक्टरेट, कॉन्वेंट, ऑफ

2. 'को' परसर्ग का प्रयोग केवल कर्म कारक में ही नहीं होता, अपितु कर्ता, संप्रदान और अधिकरण कारकों में भी होता है। निम्नलिखित वाक्यों के रेखांकित अंशों पर ध्यान देते हुए कारक बताइए।
   - (क) मेरी माँ को कार चलानी पड़ती है।
   - (ख) 1976 में चंद्रा को डॉक्टरेट मिली माइक्रोबायोलॉजी में।
   - (ग) राष्ट्रपति को सलामी देती चंद्रा।
   - (घ) रात को मैं सो नहीं पाया।
3. पाठ में कुछ ऐसे शब्द आए हैं जिनका अर्थ एक से नहीं, अनेक शब्दों से अर्थात् वाक्यांश से स्पष्ट हो सकता है; जैसे 'जिजीविषा' अर्थात जिसमें जीने की इच्छा हो।
4. निम्नलिखित शब्दों के अर्थ वाक्यांश में दीजिए –

   तटस्थ, महत्त्वाकांक्षा, अभिशप्त, आभामंडित, सुदीर्घ, सहिष्णु, निष्प्राण।
5. मिश्र वाक्य में एक मुख्य उपवाक्य होता है और अन्य उपवाक्य आश्रित उपवाक्य होते हैं। निम्नलिखित वाक्यों में उदाहरण के अनुसार प्रयुक्त मुख्य उपवाक्य और आश्रित उपवाक्य अलग-अलग लिखिए।

   उदाहरण : मैडम, आप कह रही थीं कि आपके दामाद हवाई के ईस्ट-वेस्ट सेंटर में हैं। "आप कह रही थीं" – मुख्य उपवाक्य है और

   "आपके दामाद हवाई के ईस्ट-वेस्ट सेंटर में हैं" – मुख्य उपवाक्य का आश्रित उपवाक्य है।

   इस प्रकार वाक्य में एक मुख्य उपवाक्य है और एक आश्रित उपवाक्य।
   - (क) आप उन्हें मेरा बायोडाटा भेजकर पूछ सकेंगी कि मुझे वहाँ की कोई फ़ैलोशिप मिल सकती है?
   - (ख) एक ऐसी अभिशप्त काया देखी जिसे विधाता ने कठोरतम दंड दिया है।
   - (ग) जो उदासी उसके चेहरे पर कभी नहीं आने पाई, वह अनजाने ही उसकी कविता में छलक आई थी।
   - (घ) मैंने इसी से एक ऐसी कार का नक्शा बनाकर दिया है, जिससे मैं अपने पैरों के निर्जीव अस्तित्व को भी सजीव बना दूँगी।

योग्यता-विस्तार

1. ऐसे कुछ व्यक्तियों के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए जिन्होंने जीवन के एक पक्ष में कुछ खोकर दूसरे पक्ष में प्रगति द्वारा नाम कमाया हो। इस प्रसंग में राणा साँगा का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है जो अस्सी घाव लगने पर भी अदम्य उत्साह से बाबर के विरुद्ध लड़ते रहे,

   'अस्सी घाव लगे थे तन में, फिर भी व्यथा नहीं मन में।'
2. "यदि डॉ. चंद्रा की माता में इतनी सहनशक्ति, इतनी त्याग भावना न होती तो, ..." विषय पर कक्षा में चर्चा कीजिए।
3. जानकारी हासिल कीजिए कि विकलांगों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आजकल सरकार द्वारा क्या प्रयास किए जा रहे हैं? उनके लिए स्थापित कुछ संस्थाओं के नाम भी बताइए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

विलक्षण	–	अद्भुत
विच्छिन्न	–	अलग करना
विधाता	–	ईश्वर
अभिशप्त	–	शाप से ग्रस्त
काया	–	शरीर
नतमस्तक	–	सिर झुकाए
नियति	–	भाग्य
आघात	–	चोट
बित्ते-भर की	–	छोटे कद की
देवांगना	–	देवी, अप्सरा
मेधावी	–	बुद्धिमान
नूर मंज़िल	–	लखनऊ में स्थित मानसिक रोगियों का अस्पताल
उत्फुल्ल	–	प्रसन्न
विषाद	–	उदासी, दुख

उत्कट - तीव्र, प्रबल
जिजीविषा - जीने की इच्छा
कंठगत - गले में अटके हुए
पक्षाघात - लकवा मारने का रोग
पटुता - निपुणता
सर्वांग - सारा अंग, पूरा भाग
अचल - निष्क्रिय
यातनाप्रद - कष्ट देने वाला
कंठ अवरुद्ध होना - गला रुँधना, भावावेग से बोल न पाना
अभिशाप - बड़ा शाप
उपचार - इलाज
आर्थोपैडिक - हड्डियों से संबंधित
निष्ठा - दृढ़ता, निश्चय
जिरह-बख्तर - कवच
क्षत-विक्षत - बुरी तरह घायल
आभामंडित - तेज से भरा हुआ
रंचमात्र - तनिक भी, ज़रा भी
व्यथा - दर्द, कष्ट
उल्लास - खुशी, उमंग

7. गिरिधर की कुंडलियाँ

(प्रस्तुत कुंडलियों में गिरिधर कवि ने जीवन की कुछ व्यावहारिक और अनुभव सिद्ध बातें रोचक ढंग से कही हैं। जैसे बीती बातों में ही उलझे न रहकर हमें अपने भविष्य को सँवारने का प्रयत्न करना चाहिए। कार्य-सिद्ध होने तक अपने मन की बात को किसी के सामने प्रकट नहीं करना चाहिए। प्रत्येक कार्य को सोचने-समझने के बाद ही करना चाहिए, वरना पछताना पड़ सकता है। लक्ष्मी चंचल होती है, अतएव उसे पा जाने पर अभिमान नहीं करना चाहिए। संसार में गुणवान का ही आदर होता है। गुण के बिना व्यक्ति सुशोभित नहीं होगा।)

(1)

बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहज में, ताही में चित्त देइ।।
ताही में चित्त देइ, बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हँसे न कोइ, चित्त में खता न पावै।।
कह गिरिधर कविराय, यहै करुमन परतीती।
आगे को सुख समुझि, हो, बीती सो बीती।।

(2)

साईं अपने चित्त की, भूलि न कहिए कोइ।
तब लग मन में राखिए, जब लग कारज होइ।।
जब लग कारज होइ, भूलि कबहूँ नहिं कहिए।
दुरजन हँसे न कोइ, आप सियरे ह्वै रहिए।।

कह गिरिधर कविराय बात चतुरन की ताईं।
करतूती कहि देत, आप कहिए नहि साईं।।

(3)

बिना बिचारे जो करे, सो पीछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो, जग में होत हँसाय।।
जग में होत हँसाय, चित्त में चैन न पावै।
खान पान सनमान, राग-रंग मनहिं न भावै।।
कह गिरिधर कविराय, दु:ख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माहिं, कियो जो बिना बिचारे।।

(4)

दौलत पाय न कीजिए, सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारि को, ठाउँ न रहत निदान।।
ठाउँ न रहत निदान, जियत जग में जस लीजै।
मीठे वचन सुनाय, विनय सबही की कीजै।।
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निसि दिन चारि, रहत सबही के दौलत।।

(5)

गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय।।
शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को इक रंग काग सब भय अपावन।।
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर ग्राहक गुन के।।

— **गिरिधर**

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

(क) मौखिक

1. कवि के अनुसार अपने मन की बात को कब तक प्रकट नहीं करना चाहिए?
2. अपनी बात दूसरों से कह देने का खतरा क्या है?
3. धन-दौलत को जल के समान क्यों बताया गया है?
4. कोयल को सब लोग क्यों पसंद करते हैं?

(ख) लिखित

1. कवि अतीत को भुलाने और भविष्य को सँवारने की बात क्यों कहता है?
2. सोचे-समझे बिना कार्य कर डालने से क्या-क्या हानियाँ हो सकती हैं?
3. धन-दौलत पाकर अभिमान करना उचित क्यों नहीं है?
4. आशय स्पष्ट कीजिए –
   (क) खटकत है जिय माहिं, कियो जो बिना बिचारे
   (ख) अरे यह सब घट तौलत
   (ग) पाहुन निस दिन चारि, रहत सबही के दौलत
5. पाठ में आए नीति वचनों को सूक्ति रूप में लिखिए। जैसे कुंडलिया-1 का सूक्ति रूप है – बीती बातें भुलाकर भविष्य के बारे में सोचना चाहिए।

योग्यता-विस्तार

1. बच्चन की कविता 'जो बीत गई सो बात गई' को खोजकर पढ़िए और उसकी तुलना कुंडलिया-1 से कीजिए।
2. अपने अध्यापक की सहायता से कुंडलिया छंद के विषय में जानिए और पाठ में दी गई कुंडलियों को कंठस्थ कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

कुंडलिया	-	छंद विशेष, जिसमें पहली दो पंक्तियाँ दोहे की होती हैं और अंतिम चार रोला की। दोहे के अंतिम चरण को रोला के प्रथम चरण के रूप में दोहराया जाता है और पहला शब्द ही छंद का अंतिम शब्द होता है।
बिसारि दे	-	भूल जा
सुधि लेइ	-	खोज-खबर लो, सँवारो
सहज	-	स्वाभाविक
खता	-	कष्ट, दोष
परतीती	-	विश्वास, प्रतीति
साईं	-	स्वामी
सियरे	-	शीतल, शांत
चतुरन की ताईं	-	समझदारों के लिए
करतूती	-	कर्म
ठाउँ	-	स्थान
निदान	-	आखिर
जियत	-	जीते हुए
सब घट तौलत	-	सब की परीक्षा लेती है
पाहुन	-	मेहमान, अभ्यागत
सहस	-	सहस्र, हज़ार
ठाकुर मन के	-	मन के मालिक

8. नचिकेता

(प्रस्तुत पाठ की कथा कठोपनिषद से ली गई है। यह कथा बालक नचिकेता के माध्यम से एक ऐसा चरित्र प्रस्तुत करती है जिसमें अटूट, सत्य-निष्ठा, दृढ़ पितृ-भक्ति के साथ-साथ अनुचित कार्य करने पर पिता का विरोध करने का और आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए सांसारिक सुखों के प्रलोभनों को ठुकरा देने का साहस भी है।)

यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित थी। वेद-मंत्रों के उच्चारण के साथ घी और सामग्री की आहुतियाँ उसमें पड़ रही थीं। सारे वातावरण में सुगंधि व्याप्त थी और वाजश्रवा के चेहरे पर विशेष प्रसन्नता झलक रही थी। उसके द्वारा आयोजित यज्ञ की आज पूर्णाहुति जो थी! देश भर के बड़े-बड़े विद्वान और ऋषि-मुनि पधारे थे। यज्ञ के उपरांत वाजश्रवा ब्राह्मणों को प्रभूत दक्षिणा देगा, ऐसा सभी सोच रहे थे।

यज्ञ समाप्त हुआ। ब्राह्मणों ने वाजश्रवा को आशीर्वाद दिया और वाजश्रवा ने उन्हें दक्षिणा देना प्रारंभ किया। किंतु यह क्या! यज्ञ की इस अंतिम घड़ी में वाजश्रवा को किस मोह ने घेर लिया? कहाँ तो उसने निश्चय किया था कि यज्ञ की समाप्ति पर वह अपनी सारी संपत्ति दान कर देगा और कहाँ दक्षिणा में देने लगा ऐसी निर्बल और बूढ़ी गाएँ, जिन्होंने दूध देना ही बंद कर दिया था।

लोग दबी ज़बान से वाजश्रवा की आलोचना कर रहे हैं।

किंतु सबसे अधिक दुखी है कोने में बैठा वह किशोर बालक।

कौन है वह?

वह है वाजश्रवा का पुत्र नचिकेता।

अपने पिता की इस कृपणता को देखकर नचिकेता से न रहा गया। खिन्न मन से वह उनके पास गया और बोला, "पिताजी, दक्षिणा में तो यजमान अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तु देते हैं। आपने तो ऐसी गाएँ दी हैं, जिनका आपके लिए कोई उपयोग ही नहीं रह गया है। इससे आपको पुण्य नहीं मिलेगा।"

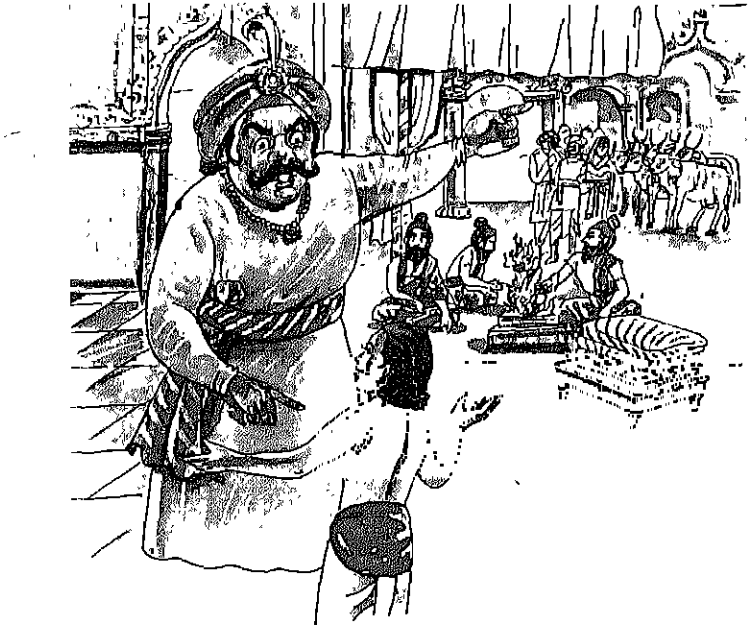
फिर कुछ रुककर बोला, "पिताजी आपको सबसे प्रिय तो मैं हूँ, आप मुझे ही किसी को दक्षिणा में क्यों नहीं दे देते?"

वाजश्रवा ने नचिकेता की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया, पर नचिकेता अपना प्रश्न दुहराता रहा। वह बार-बार पूछता, "आप मुझे किसको दक्षिणा में दे रहे हैं?"

वाजश्रवा झुँझला उठे। बच्चे के हठ से क्रुद्ध होकर वे बोले, "जा, मैंने तुझे मृत्यु को दिया।"

नचिकेता विनम्र भाव से बोला, "पिताजी आप क्रुद्ध न हों। मैं आपके आदेश का पालन करूँगा। मुझे मृत्यु के देवता यमराज के पास जाने की अनुमति दीजिए।"

वाजश्रवा को अब अनुभव हुआ कि क्रोध के कारण उसके मुँह से बहुत ही अनुचित बात निकल गई है। किंतु अब उपाय ही क्या था? जिस तरह धनुष से छूटा हुआ बाण वापस नहीं आ सकता, उसी तरह मुँह से निकली हुई बात भी लौटाई नहीं जा सकती थी। नचिकेता अपने पिता और अन्य सभी संबंधियों से विदा लेकर चल ही तो दिया यमराज के घर।



यमराज उस समय यमपुरी में नहीं थे। तीन दिन तक वह किशोर भूखा-प्यासा उनके दरवाज़े पर पड़ा रहा। यमराज लौटे तो एक ब्राह्मण कुमार को अपने घर इस दशा में देखकर बहुत दुखी हुए। साथ ही उनका ध्यान इस बात पर गए बिना नहीं रहा कि वह बालक अन्य बालकों से बहुत भिन्न था। उसके मुख पर तेज था और चेहरे पर दृढ़ता झलक रही थी। जिन यमराज के नाम से सभी मनुष्य थर-थर काँप उठते हैं, उनके सम्मुख बालक नचिकेता बिना किसी भय के, स्वाभिमान के साथ खड़ा था।

यमराज ने नचिकेता का यथोचित सत्कार किया और फिर उसके आने का प्रयोजन पूछा। नचिकेता ने अपने पिता के यज्ञ की सारी कथा सुनाकर आने का कारण बताया। यमराज बोले, "नचिकेता, तुम्हारी पितृ-भक्ति और

दृढ़ निश्चय से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। साथ ही मुझे इस बात का बहुत दुख है कि तुम्हें तीन दिन मेरे दरवाज़े पर भूखा-प्यासा रहना पड़ा। इसका प्रायश्चित करने के लिए मैं तुम्हें तीन वर देना चाहता हूँ। बोलो, क्या माँगते हो?"

नचिकेता बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "धर्मराज, मुझे पहला वर तो यह दीजिए कि मेरे पिताजी का मुझ पर क्रोध शांत हो जाए, और जब मैं आपके पास से वापस जाऊँ तो वे मुझे पहचान लें और प्यार से बोलें।"

"ऐसा ही होगा," यमराज ने कहा, "तुम्हारे लौटने पर तुम्हारे पिता तुमसे उसी तरह से बोलेंगे, जैसे पहले बोलते थे, वे अपना सारा क्रोध भूल जाएँगे।"

"अब दूसरा वर माँगो," यमराज बोले। वर माँगने से पहले नचिकेता ने काफ़ी विचार किया। क्या माँगे वह? इस संसार में तो किसी चीज़ की इच्छा थी नहीं उसे। फिर उसे ध्यान आया कि बहुत-से मनुष्य इस संसार से परे स्वर्ग की इच्छा करते हैं। उसके पिता ने भी तो स्वर्ग की अभिलाषा से ही यज्ञ किया था। वह यमराज से बोला, "लोग कहते हैं कि स्वर्गलोक में बहुत सुख मिलता है। न वहाँ भूख-प्यास की चिंता है, न बुढ़ापा है, न कोई रोग। वहाँ के निवासी हर समय अलौकिक सुख का ही उपभोग करते रहते हैं। वहाँ आपका पाश भी नहीं पहुँचता और न लोगों को किसी अन्य प्रकार का भय ही लगता है। उस आनंदपूर्ण स्वर्ग को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है, मुझे इसका उपदेश दीजिए।"

स्वर्ग के बारे में नचिकेता की जिज्ञासा जानकर यमराज को कुछ आश्चर्य हुआ। इतना छोटा-सा बालक इस लोक में सुख देनेवाली वस्तुएँ न माँगकर अदृश्य स्वर्ग के बारे में प्रश्न कर रहा है। वचनबद्ध यमराज

ने नचिकेता को वे सब विधियाँ समझाईं, जिनसे मनुष्य स्वर्ग प्राप्त कर सकता है। नचिकेता ने जो कुछ सीखा, उसे जैसे का तैसा यमराज को सुना दिया। उसकी तीव्र बुद्धि और स्मरणशक्ति से यमराज बहुत प्रसन्न हुए।

"वत्स, अब तीसरा वर माँगो," यमराज ने कहा।

नचिकेता ने फिर विचार किया। इस पृथ्वी की किसी वस्तु की अभिलाषा उसे थी नहीं। स्वर्ग का रहस्य यमराज ने बता ही दिया था। फिर वह क्या माँगे?

पर संसार में एक वस्तु है कि जो पृथ्वी और स्वर्ग के सुख से भी बढ़कर है, और वह है हमारी अपनी आत्मा। "मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ? मृत्यु के बाद मेरा क्या होगा? मेरी आत्मा का सच्चा स्वरूप क्या है?" इस तरह के अनेक प्रश्न प्रायः नचिकेता के मन में उठते रहते थे।

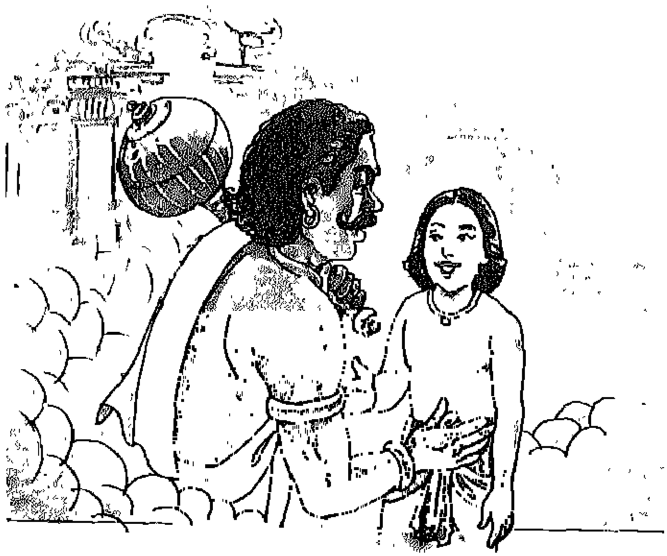
वह यमराज से बोला, "भगवन् कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा रहती है, कुछ कहते हैं कि नहीं रहती। इस विषय में मेरा अज्ञान अब तक दूर नहीं हुआ है। तीसरे वर के रूप में कृपाकर मुझे आत्मा का रहस्य समझाइए।"

यमराज को उस अल्पवयस्क बालक से ऐसे गंभीर प्रश्न की आशा नहीं थी। वे बोले, "वत्स, यह तुमने कैसा वर माँगा! तुम अभी छोटी अवस्था के बालक हो। आत्मा का रहस्य तो बड़े-बड़े विद्वान भी नहीं जान सके हैं। यहाँ तक कि देवताओं को भी इसके विषय में संदेह रहता है। तुम मुझसे कोई और वर माँग लो।"

पर नचिकेता अपनी बात पर दृढ़ रहा। बोला, "जब बड़े-बड़े विद्वान भी आत्मा का रहस्य नहीं जान पाए हैं और जब देवताओं को भी इसके

विषय में संदेह रहा है तब तो मैं आत्मा का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहूँगा। इस ज्ञान का देनेवाला भी तो आपसे बढ़कर और कोई नहीं मिलेगा। आप मुझे कृपाकर आत्मा के बारे में बताइए।"

तब यमराज ने नचिकेता को अनेक प्रलोभन दिए। बोले, "नचिकेता, तुम इस प्रश्न का उत्तर जानने के बजाय कुछ और क्यों नहीं माँग लेते? तुम यथेच्छ भूमि, महल, नौकर-चाकर, सोना-चाँदी और अन्य प्रकार की



धन-संपत्ति ले लो। तुम जब तक जीना चाहो तब तक जिओ। तुम्हारी अन्य जो कोई भी इच्छा हो, मैं उसे पूरा करने को तैयार हूँ। किंतु नचिकेता, आत्मा और मृत्यु के रहस्य के बारे में मत पूछो।"

शांत और गंभीर भाव से नचिकेता बोला "आपने जो इतनी चीज़ों का वरदान मुझे देने के लिए कहा है, क्या इनमें से किसी से भी मनुष्य को

सच्चा सुख मिल सका है? संसार के सुख शरीर और इंद्रियों को क्षीण ही तो करते हैं। धन से मनुष्य की तृप्ति नहीं हो सकती। मैं तो जन्म और मृत्यु के पीछे छिपे हुए रहस्य को ही जानना चाहता हूँ। इसके अतिरिक्त और कोई वर मुझे नहीं चाहिए।"

यमराज की परीक्षा में नचिकेता खरा उतरा। संसार का कोई भी प्रलोभन उसे अपने निश्चय से डिगा नहीं सका।

प्रसन्न होकर यमराज ने उसे उपदेश देना आरंभ किया।

"आत्मा न तो कभी पैदा होती है, न मरती है। वह अजर-अमर है और शरीर के नष्ट हो जाने पर भी विद्यमान रहती है।"

"आत्मा का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। ज्ञानी मनुष्य सब प्राणियों को अपने अंदर और अपने आप को सब प्राणियों के अंदर देखता है।"

"अपने शरीर को यदि तुम एक रथ मानो तो इंद्रियाँ उसके घोड़े हैं। मन उन घोड़ों की लगाम है और बुद्धि सारथी के स्थान पर है। इस रथ पर बैठकर यात्रा करनेवाला यात्री आत्मा है। उसी के लिए यह सारा खेल रचा गया है।"

"जिस प्रकार दुष्ट घोड़े रथ में सवार व्यक्ति को संकट में डाल देते हैं, उसी प्रकार अनियंत्रित इंद्रियाँ मनुष्य को दुर्दशा की ओर ले जाती हैं।"

"तो पुत्र, उठो, जागो और श्रेष्ठ व्यक्तियों के पास जाकर उनसे ज्ञान प्राप्त करो।"

बालक नचिकेता ने यम के उपदेश पर आचरण किया। वह बड़ा होकर विद्वान और धर्मात्मा ऋषि बना।

– विभागीय

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. यज्ञ की समाप्ति पर वाजश्रवा को किस मोह ने घेर लिया था?
2. नचिकेता अपने पिता के किस व्यवहार के कारण दुखी हो गया था?
3. नचिकेता के अनुसार दक्षिणा का क्या रूप होना चाहिए था?
4. नचिकेता अपने पिता से बार-बार क्या पूछता था?
5. नचिकेता के प्रश्नों से झुँझलाकर वाजश्रवा ने क्या कहा?
6. नचिकेता की दृष्टि में कौन-सी वस्तु पृथ्वी और स्वर्ग के सुख से भी बढ़कर थी?

(ख) लिखित

1. वाजश्रवा नचिकेता को मृत्यु को देने की बात को वापस क्यों न ले सका?
2. यमराज को नचिकेता अन्य बालकों से भिन्न क्यों लगा?
3. यमराज को किस बात का दुख हुआ और उन्होंने उसके लिए प्रायश्चित क्यों किया?
4. नचिकेता ने यमराज से कौन-से तीन वर माँगे?
5. यमराज ने नचिकेता के द्वारा माँगे गए तीसरे वर के बदले में क्या-क्या प्रलोभन दिए और क्यों?
6. अनेक प्रलोभनों के बाद भी नचिकेता आत्मा और मृत्यु के रहस्य को समझने का आग्रह क्यों करता रहा?
7. यमराज ने आत्मा के स्वरूप के बारे में क्या बताया?
8. यमराज ने शरीर, आत्मा, इंद्रियाँ, मन और बुद्धि को किस-किस के समान बताया है?

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों का संधि-विच्छेद कीजिए तथा उनका प्रकार बताइए –
   यथोचित, निर्बल, मनोभाव, वाङ्मय, जगन्नाथ, अनुचित

2. पाठ में प्रकोप, प्रलोभन, प्रगति आदि 'प्र' उपसर्ग लगकर बने शब्द आए हैं। इनमें 'प्र' का अर्थ अधिकता के संदर्भ में हुआ है; जैसे –
प्र + कोप, प्र + गीत, प्र + लोभ (न)
किंतु 'प्र' उपसर्ग के आरंभ, उत्पत्ति, उत्कर्ष आदि अर्थ भी निकलते हैं; जैसे – प्रस्थान (आरंभ), प्रपोत्र (उत्पत्ति), प्राचार्य (उत्कर्ष)। पाठ में से 'प्र' उपसर्ग वाले शब्द चुनिए और उनमें निहित अर्थ भी बताइए।
3. वाक्य में क्रिया का लिंग और वचन सामान्यतः कर्ता और कर्म के लिंग और वचन के अनुसार निर्धारित होता है। बताइए, नीचे लिखे वाक्यों में क्रियाओं का लिंग और वचन किस पद के अनुसार है –
   (क) यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित थी।
   (ख) लोग वाजश्रवा की आलोचना कर रहे हैं।
   (ग) यमराज ने नचिकेता को अनेक प्रलोभन दिए।
   (घ) इस तरह के अनेक प्रश्न नचिकेता के मन में उठते रहते थे।
   (ङ) वाजश्रवा के चेहरे पर प्रसन्नता झलक रही थी।
4. अर्थ के आधार पर नीचे लिखे वाक्यों के प्रकार बताइए –
   (क) आप मुझे किसको दक्षिणा में दे रहे हैं?
   (ख) यमराज उस समय यमपुरी में नहीं थे।
   (ग) तुम्हारी पितृ-भक्ति और दृढ़ निश्चय से मैं बहुत प्रसन्न हूँ।
   (घ) तुम जब तक जीना चाहो तब तक जिओ।
   (ङ) जब बड़े-बड़े विद्वान भी आत्मा का रहस्य नहीं जान पाए हैं तो मैं आत्मा का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहूँगा।
   (च) किंतु वह क्या!

कुछ ऐसी पौराणिक गाथाओं और लोककथाओं का संकलन कीजिए जिनमें कृपणता और क्रोध के दुष्परिणामों को उजागर किया गया हो तथा दृढ़ संकल्पशक्ति, सांसारिक सुखों के प्रलोभनों के प्रति विरक्ति एवं पितृ-भक्ति जैसे गुणों के महत्त्व को दर्शाया गया हो।

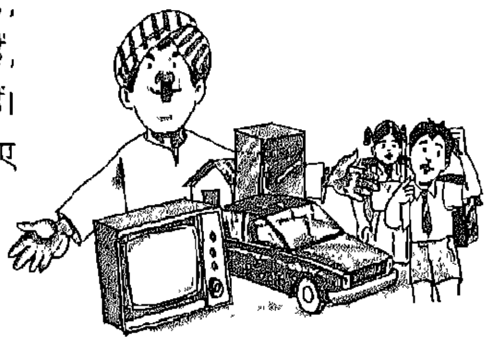
शब्दार्थ और टिप्पणी

आहुति	-	यज्ञ या हवन में अग्नि को समर्पित की जाने वाली सामग्री
पूर्णाहुति	-	हवन कर्म की अंतिम आहुति
प्रभूत	-	अधिक मात्रा में, प्रचुर
कृपणता	-	कंजूसी
खिन्न	-	उदास
यजमान	-	यज्ञ करने वाला
प्रयोजन	-	उद्देश्य
प्रायश्चित	-	बुरे काम के फल से बचने के लिए किया जाने वाला कार्य
पाश	-	रस्सी से बनाया गया घेरा, बंधन
अल्पवयस्क	-	कम उम्र का, छोटा
प्रलोभन	-	लालच
यथेच्छ	-	जितना चाहिए, इच्छा के अनुकूल
खरा उतरना	-	सफल सिद्ध होना

9. अगर नाक न होती

(प्रस्तुत पाठ में लेखक ने नाक से जुड़े विभिन्न मुहावरों के प्रयोग द्वारा समाज में और शरीर पर नाक के महत्त्व को दर्शाया है। इस हास्य-व्यंग्य प्रधान लेख में विभिन्न उदाहरण देते हुए लेखक ने नाक की अच्छाइयों और बुराइयों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है।)

कितना अच्छा होता, अगर नाक न होती। नाक की चिंता में आदमी का जीना मुहाल हो गया है। नाक रखने की खातिर लोग मुकदमेबाजी में बरबाद हो जाते हैं, कर्ज़ लेकर भी ब्याह-शादी, भात-छोछक आदि में अंधाधुंध खर्च करते हैं। जन्म पर ही नहीं, मृत्यु पर भी दावत खिलाते हैं। पड़ोसी के बच्चों को कॉन्वेंट स्कूल में जाते देख अपने बच्चों को भी मज़बूर होकर उसी में दाखिला दिलाते हैं। खरीदने की औकात न होने पर भी महँगी किश्त देकर टी.वी., फ़्रिज या कूलर आदि ले आते हैं, क्योंकि नाक नीची होने से डरते हैं। लोग अपनी धाक जमाने के लिए नाक ऊँची रखते हैं।



नाक बची रहे, इसीलिए आदमी खाकी वरदीधारियों, आयकर अधिकारियों या उनके



दलालों की पत्रम्-पुष्पम् से पूजा करता है, वर्ना पकड़ा जाएगा और फिर किसी के सामने कैसे नाक लगाएगा?

नाक के कारण आदमी को नाकों चने चबाने पड़ते हैं। नाक बड़ी जल्दी कटती है और प्राय: बिना किसी हथियार के ही कट जाती है। आदमी की अपनी नाक के साथ खानदान की नाक भी जुड़ी रहती है। कभी कोई ऐसी-वैसी बात हो जाए, लड़का घर से रूठ कर भाग जाए, लड़की लव मैरिज कर ले या कोई झूठा-मूठा इलज़ाम जान को लग जाए, तो अपनी ही नहीं, पूरे खानदान की नाक कट जाती है।

यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिनकी नाक कट जाती है यानी जो खुद नकटे होते हैं, वे दूसरों को भी नकटा देखना चाहते हैं।

'मान न मान मैं तेरा मेहमान' की तरह जुकाम आकर पसर जाता है और नाक में दम कर देता है। नाक तब बहुत बुरी लगती है, जब वह किसी शुभ कार्य के वक्त अनायास छींक मार देती है। वास्तव में नाक और छींक दोनों सहेली हैं, पर ज़्यादातर लोग उन्हें अकेली ही देखना पसंद करते हैं।

एक तरफ़ लोग छींक की वजह से झींकते हैं, तो कुछ लोग नाक में फुरेरी डालकर या नसवार सूँघकर जान-बूझ कर छींकते हैं।

जब आदमी का बुरा वक्त आता है या उसे किसी से कोई काम करवाना होता है, तब वह सारी हेकड़ी भूल जाता है। एक बार क्या हज़ार बार नाक रगड़ता है। जब कोई गलती हो जाती है, तब भी आदमी को अपनी नाक रगड़नी पड़ती है। जिन लोगों में बदले या ईर्ष्या की भावना होती है, वे भी मौके की तलाश में रहते हैं कि कब, कैसे किसी की नाक रगड़वा दें।

ज़िंदगी में हँसना-गाना ही नहीं, रोना भी पड़ता है। हँसने की बात छोड़िए, पर रोते समय आँखों में आँसू आते हैं, तो नाक भी उनका साथ निभाती है। बहते आँसुओं को पोंछना कोई बुरी बात नहीं, लेकिन नाक पोंछने से तो रोने का सारा मज़ा ही किरकिरा हो जाता है। करुण रस में बरबस बीभत्स रस आ टपकता है। नारी तो नाक पोंछने का काम साड़ी के पल्लू से चला सकती है, पर बेचारे उस पैंटधारी मर्द का क्या हाल होगा, जिसे जेब में रूमाल रखने का खयाल ही न रहा हो।

गुस्सा भी बहुत से लोगों की नाक पर रखा रहता है। उनसे ज़रा कुछ कहा नहीं कि बिना बात नाक फुला लेते हैं।

नाक में जितनी कमियाँ या बुराइयाँ हैं, उससे ज़्यादा अच्छाइयाँ हैं। इसलिए जिनकी नाक नहीं होती, वे भी नाक लगाते हैं, भले ही इस बात पर कोई दूसरा नाक-भौंह सिकोड़े तो सिकोड़ता रहे।

नाक रहना बहुत ज़रूरी है। वैसे भी और चेहरे पर भी। नाक चाहे सारस जैसी लंबी हो या चिलगोजे जैसी छोटी, चोंथ जैसे चपटी हो अथवा पकौड़ा जैसी मोटी, लेकिन होनी ज़रूर चाहिए। जिसके नाक न हो, उसकी

कोई सूरत देखना भी पसंद न करेगा बल्कि देखकर डरेगा। भला बिना छज्जे के मकान का फ्रंट शोभा देता है?

नाक हो और सुंदर हो तो सोने में सुहागा है। इसीलिए कवियों ने नख-शिख-वर्णन के अंतर्गत और फुटकर रूप में भी नाक का काफ़ी वर्णन किया है। उसे सोने की हीरे-मोती जड़ी नथ, नथुनी, लौंग, बुलाक आदि से सजाया है।

मध्यकालीन काव्य में नायिकाओं की नाक के लिए बहुत-सी उपमाएँ दी गई हैं। नाक को चंपे की कली, तिल के सुगंधित फूल से निर्मित और तलवार की धार से बढ़कर बताया गया है। यहाँ तक तो ठीक है, पर एक बात समझ में नहीं आती कि अधिकांश कवियों ने नाक की उपमा तोते की चोंच से क्यों दी है? हम क्लास में जब किसी सुंदरी-सुमुखी नायिका की नाक की उपमा तोते की चोंच से पढ़ाते हैं, तो हमारे हाथ के तोते उड़ जाते हैं, मन में अजीब से भाव उमड़ आते हैं। सोचने की बात है कि ऐसी नाक



किसी चेहरे पर चँवर चाँद लगाएगी या दीवार में ठुके हुए उलटे हुक-सी नज़र आएगी?

उपन्यास-कहानियों में सुंदर नाक को 'सुतवाँ' नाक कहा जाता है। ऊँची और दीर्घ नाक की तुलना कुल्हाड़ी से की जाती है। छोटी और सुकोमल नासिका को भेंड़ की-सी नाक की संज्ञा दी जाती है।

नाक शरीर का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। अगर चित्त लेटकर देखें, तो यह बात अपने आप सिद्ध हो जाएगी कि हाथ, पाँव, मुँह, कान, आँख आदि में सबसे ऊँचा स्थान नाक को ही प्राप्त है। अगर आँख आ जाए या चली जाए, तो ऐसी स्थिति में काला चश्मा लगाया जा सकता है। कान कट-फट जाए, तो उसे कंटोपा पहनकर छिपाया जा सकता है, लेकिन अगर कहीं नाक कट जाए तो चेहरा रेगिस्तान की तरह एकदम सपाट अथवा चक्की का-सा पाट नज़र आएगा। हालाँकि प्लास्टिक सर्जरी द्वारा उसका इलाज हो सकता है, परंतु वह इतना महँगा पड़ेगा कि बड़े-से-बड़े नक्कूशाह को भी नानी याद आ जाएगी।

कुछ लोग नाक पर मक्खी तक नहीं बैठने देते। बहुत से ऐसे भी होते हैं कि जब वे कुंभकर्ण की भाँति सोते हैं, तो उनकी नाक नक्कारे-सी बजती है। कई लोगों की नाक के नीचे कुछ भी होता रहे, पर वे दीन-दुनिया से बेखबर बने रहते हैं। ऐसे लोगों की भी कमी नहीं जो दूसरों को नाक नचाते हैं। किसी की नाक पर दे मारना भी कई लोग अपनी शान समझते हैं। कुछ लोग सचमुच नाकदार होते नहीं, पर बनते हैं, खैर, जो भी हो, नाक रहने में ही भलाई है। नाक न होती, तो खुशबू और बदबू में क्या अंतर रह जाता? नाक के अभाव में चंदन, कपूर, इत्र-फुलेल आदि सब बेमानी हो जाते। असली हींग और देसी घी की पहचान कैसे होती?

आँखें हमेशा से लड़ती आई हैं। लड़ना-लड़ाना उनका स्वभाव है। किसी की आँखें किसी से लड़ें या मिल कर चार हो जाएँ, तो कोई हर्ज़ नहीं, मगर वे आपस में ही लड़ बैठें, यह कहाँ तक ठीक है? नाक ही तो है, जो बीच में पड़कर उन्हें लड़ने से रोकती है, अन्यथा आदमी उनके परस्पर लड़ने से आँखों से ही हाथ धो बैठता।

वैसे भी अब लोगों की नज़रों में फ़र्क आता जा रहा है। कहीं नज़र उठ रही है, कहीं गिर रही है, कहीं गड़ रही है और इसी के साथ चश्मों की ज़रूरत भी बढ़ रही है। चश्मा चाहे नज़र बढ़ाने का हो या नज़रें चुराने का, चाहे धूप से बचाने का हो, चाहे किसी रूप को छिपकर निहारने का, अगर नाक न होती, तो बताइए, यह चश्मा कहाँ ठहरता? नाक ही तो चश्मे का अच्छा-खासा स्टैंड है।

नाक के कारण ही सीता का हरण और रावण का मरण हुआ। अगर सूपनखा की नाक न कटती तो रामायण की रचना कैसे होती? महाभारत का आधार भी द्रौपदी की नाक ही थी, जो अत्यंत खतरनाक सिद्ध हुई।

सिर और मुँह के बीच, नाक कटलेट की भाँति रहती है, पर हकीकत यह है कि इसे खाने की नौबत नहीं आती। लोग जब चाहे किसी का सिर खा सकते हैं, दिमाग और खोपड़ी चाट सकते हैं, पर नाक के साथ ऐसा कुछ नहीं हो सकता। अच्छे-अच्छे चटोरों को भी यहाँ मुँह की खानी पड़ती है।

नाक के और भी बहुत से फ़ायदे हैं। उच्छ्वास और निःश्वास का कार्य मुँह से किया जा सकता है, पर प्राणों का आधार श्वास है और श्वास लेने का साधन नाक ही है। नाक की गड़बड़ी से आदमी नकियाने लगता है, वह नकसुरा कहलाता है।

नाक हीटर का काम भी करती है। बाहर की ठंडी हवा को गरम करके अंदर पहुँचाती है और ठंड लगने से बचाती है। आजकल पर्यावरण-प्रदूषण ज़ोरों पर है। वातावरण में व्याप्त प्रदूषण को फेफड़ों तक जाने से नाक ही रोकती है। नाक में उगे बाल छन्ने और झाड़ू का काम करते हैं।

बहुत से लोग मतलब साधने के लिए अपने बॉस की नाक के बाल बन जाते हैं।

जिस प्रकार सिंगट्टा दिखाने, आँख दिखाने, दाँत दिखाने, पीठ दिखाने आदि के मुहावरे प्रचलित हैं, दुर्भाग्य कहें या सौभाग्य, नाक दिखाने का कोई मुहावरा नहीं है। हाँ, यदि नाक बीमार पड़ जाए तो कोई कितना ही नक्कू क्यों न हो, उसे भी मजबूर होकर नाक दिखाने के लिए किसी नाक वाले डॉक्टर की शरण में भागना पड़ता है।

– **गोपाल बाबू शर्मा**

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. समाज में नाक रखने के लिए लोगों को क्या-क्या करना पड़ जाता है?
2. जिनकी नाक कट जाती है वे दूसरों को भी नकटा देखना क्यों पसंद करते हैं?
3. नाक और छींक को लेखक ने सहेली क्यों कहा है?
4. लोग किसी की नाक रगड़वाने के लिए मौके की तलाश में क्यों रहते हैं?
5. मध्यकालीन काव्य में नायिकाओं की नाक के लिए कौन-कौन-सी उपमाएँ दी गई हैं?
6. रामायण-महाभारत की कथा में नाक की क्या भूमिका रही है?

(ख) लिखित

1. किन स्थितियों में आदमी को अपने खानदान की नाक कट जाने का डर रहता है?
2. लेखक ने नाक को शरीर का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग क्यों माना है?
3. लेखक ने नाक की बुराइयों के साथ-साथ उसकी अच्छाइयाँ भी बताई हैं। इन दोनों के संबंध में लेखक द्वारा दिए गए उदाहरणों का वर्णन कीजिए।
4. नाक हमें बीमारियों से किस प्रकार बचाती है?
5. "अगर नाक न होती' शीर्षक की सार्थकता पर टिप्पणी कीजिए।

भाषा-अध्ययन

1. पाठ में तत्सम, तद्‌भव, देशज और विदेशी शब्द आए हैं; जैसे – मनोवैज्ञानिक (तत्सम), ब्याह (तद्‌भव), छोंछक (देशज), मुकदमा (अरबी), कूलर (अंग्रेज़ी)। पाठ में से ऐसे तीन-तीन शब्द छाँटिए।
2. अव्यय का एक प्रकार संबंधबोधक है जो संज्ञा अथवा संज्ञा के समान प्रयुक्त पद के बाद आता है जिससे उस संज्ञा का संबंध वाक्य के दूसरे पद के साथ स्थापित होता है; जैसे – आदमी की अपनी नाक **के साथ** खानदान की नाक भी जुड़ी रहती है – यहाँ 'के साथ' संबंधबोधक अव्यय है।
   निम्नलिखित संबंधबोधक अव्ययों का प्रयोग करते हुए वाक्य बनाइए –
   के सामने, के बिना, के नीचे, के ऊपर, की ओर, के बदले, पर्यंत, की अपेक्षा
3. निम्नलिखित वाक्यों को उदाहरण के अनुसार बदलिए –
   उदाहरण : उसे किसी का कोई काम करना होता है।
   ⇒ उसे किसी का कोई काम करवाना होता है।
   (क) वे मौके की तलाश में रहते हैं कि कब, कैसे किसी की नाक रगड़ दें।
   (ख) यह कोशिश रहती है कि उसकी नाक कट जाए।
   (ग) माँ बच्चे को दूध पिलाती है।
   (घ) सेठ जी अपने बच्चे के जन्मदिन पर सभी को दावत खिलाते हैं।

4. पाठ में 'नाक' से संबद्‌ध कई मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं; जैसे – नाकों चने चबाना, नाक कट जाना, नाक नीची होना, नाक रगड़ना, नाक फुलाना, नाक ऊँची रखना, नाक-भौंह सिकोड़ना। इन मुहावरों के अर्थ बताते हुए अपने शब्दों में वाक्य बनाइए।

योग्यता विस्तार

प्रस्तुत पाठ में नाक के संबंध में लेखक ने अनेक मुहावरों का प्रयोग किया है। आँख और कान से संबंधित मुहावरों की अर्थ सहित सूची बनाइए और उन्हें चार्ट पर प्रस्तुत कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

मुहाल – कठिन
भात-छोछक – विवाह के अवसर पर मामा की ओर से दी जाने वाली भेंट भात कहलाती है। बहन की उत्पन्न होने वाली संतान को मामा की ओर से दी जाने वाली भेंट छोछक कहलाती है
औकात – हैसियत, क्षमता, सामर्थ्य
पत्रम्-पुष्पम् – तुच्छ-सी लगने वाली भेंट
फुरेरी – सींक या तिनके के सिरे पर लपेटी हुई रुई जिस पर इत्र, तेल इत्यादि चुपड़ा जाए
नसवार – सुँघनी, ऐंठ, अकड़
हेकड़ी – जबरदस्ती
चोथ – गाय-भैंस का गोबर
फ्रंट – आगे का भाग
सुतवाँ – लंबी-पतली
नक्कूशाह – अपने को बहुत बड़ा समझने वाला, चढ़ी नाक वाला
नाकदार – प्रतिष्ठा वाला, जो अपने आप को बड़ा प्रतिष्ठित मानता हो
नाक रखना – सम्मान रखना
नाक नीची होना – अपमानित होना
नाक जमाना – प्रभाव छोड़ना

नाक बचाना	-	सम्मान की रक्षा करना
नाकों चने चबागा	-	बहुत कष्ट सहना
असम्मानित होना	-	बदनाम होना
नाक रगड़ना	-	मिन्नतें करना
मान न मान मैं तेरा मेहमान	-	जबरदस्ती गले पड़ना
गुस्सा नाक पर रखा होना	-	तुनक मिज़ाज, चिड़चिड़ा
नाक फुलाना	-	रूठना
सोने में सुहागा	-	अच्छी वस्तु में और अधिक अच्छाई
हाथ के तोते उड़ जाना	-	घबरा जाना
चार चाँद लगाना	-	सुंदरता बढ़ जाना
नानी याद आना	-	बहुत बड़े संकट में पड़ना
नाक पर मक्खी तक न बैठने देना	-	अपने विरुद्ध कुछ भी न सुनना
नाक के नीचे होना	-	उपस्थिति में
नाक नचाना	-	परेशान करना
नाक रहना	-	सम्मान बचा रहना
आँखें लड़ना	-	प्यार होना
आँखें चार होना	-	नज़र से नज़र मिलना
सिर खाना	-	परेशान करना, दिमाग चाटना
मुँह की खाना	-	हार जाना
नाक का बाल बनना	-	बहुत प्रिय होना
सिंगट्टा दिखाना	-	अँगूठा दिखाना
आँख दिखाना	-	डाट-डपट करना
दाँत दिखाना	-	दीनता प्रकट करना
पीठ दिखाना	-	हार मानना

10. राम वन-गमन



(प्रस्तुत छंद तुलसीदास की 'कवितावली' से लिए गए हैं। इनमें कवि ने वन-पथ पर जाते हुए राम-सीता और लक्ष्मण की मानसिक एवं शारीरिक दशा तथा ग्राम वधुओं की प्रेम, मुग्धता, विस्मय आदि की भाव-विह्वल प्रतिक्रिया का चित्रण किया है। अयोध्या के पैतृक राज वैभव को राम ने उसी प्रकार छोड़ दिया है जैसे कोई राही रास्ते के पेड़-पौधों, साथियों और सराय आदि को छोड़ देता है। कोमलांगी राज-वधू सीता और दशरथ के राजकुमार राम और लक्ष्मण को कठोर वन-पथ पर चलते देख ग्राम वधुएँ वनवास का दंड देने वाले राजा-रानी को भला-बुरा कहती हैं।)

कीरके कागर ज्यों नृपचीर, बिभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवास के रूख ज्यों, पंथके साथ ज्यों लोग-लोगाई।।
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया, मनो धर्मु क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन रामु चले तजि बापको राजु बटाउ की नाईं।।

पुरतें निकसी रघुबीरबधू धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जलकी, पुट सूखि गए मधुराधर वै।।
फिरि बूझति हैं, चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै?
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै।।

बनिता बनी स्यामल गौरके बीच,
बिलोकहु, री सखि! मोहि-सी ह्वै।
मगजोगु न कोमल, क्यों चलिहै,
सकुचाति मही पदपंकज छ्वै।।
तुलसी सुनि ग्रामबधु बिथकीं,
पुलकीं तन, और चले लोचल च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहनरूप,
अनूप हैं भूपके बालक द्वै।।

रानी मैं जानी आयानी महा, पबि-पाहनहू तें कठोर हियो है।
राजहुँ काजु अकाजु न जान्यो, कह्यो तियको जेहिं कान कियो है।।
ऐसी मनोहर मूरति ए, बिछुरें कैसे प्रीतम लोगु जियो है।
आँखिन में सखि! राखिबे जोगु, इन्हें किमि के बनबासु दियो है।।

— तुलसीदास

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

(क) मौखिक

1. वन जाते समय राम के साथ और कौन-कौन थे? कवि ने उन्हें किनका साकार रूप माना है?

2. राम की आँखों में आँसू बह निकलने का क्या कारण था?
3. ग्राम वधुएँ सीता को वन मार्ग पर चलने योग्य क्यों नहीं मानतीं?
   (क) सीता थकी-सी लगती थीं।
   (ख) उन्हें चलने में संकोच होता था।
   (ग) वे कोमलांगी थीं।
   (घ) वे बड़े घर की बहू थीं।
4. सीता जी को वन मार्ग पर चलते देखकर ग्राम वधुओं की क्या दशा हुई?

(ख) लिखित

1. अयोध्या और अयोध्यावासियों को पथिक की भाँति छोड़ देने से राम के स्वभाव की किस विशेषता का पता चलता है?
2. 'अभी और कितना चलना है?' कथन सीता की किस मनोदशा का द्योतक है?
3. वन मार्ग पर जाती सीता की दशा का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
4. राम, सीता और लक्ष्मण को वन जाते देखकर ग्राम वधुएँ सन्न क्यों रह गईं?
5. ग्राम वधुएँ रानी को अज्ञानी तथा राजा दशरथ को कर्तव्य-अकर्तव्य न समझने वाला क्यों कहती हैं?
6. निम्नलिखित पंक्तियों का सौंदर्य स्पष्ट कीजिए –
   (क) कीरके-कागर ज्यों नृपचीर, बिभूषन उप्पम अंगनि पाई।
   (ख) संग सुबंधु, पुनीत प्रिया, मनो धर्मु क्रिया धरि देह सुहाई।
   (ग) मगजोगु न कोमल, क्यों चलिहै, सकुचाति मही पदपंकज छ्वै।
   (घ) आँखिन में सखि! राखिबे जोगु, इन्हें किमि के बनबासु दियो है।

योग्यता-विस्तार

'रामचरितमानस' में वर्णित वन-गमन प्रसंग को पढ़िए और इन दोनों के अंतर पर चर्चा कीजिए।

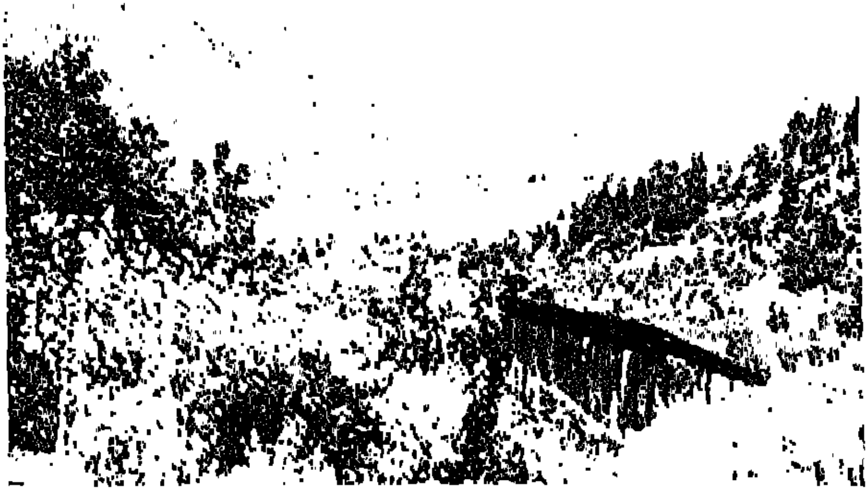
शब्दार्थ और टिप्पणी

कीर	-	तोता
कागर	-	पंख
नृपचीर	-	राजसी वस्त्र
औध	-	अवध, अयोध्या
राजिवलोचन	-	कमल के समान नयनों वाले, राजीव लोचन
बटाउ	-	राहगीर, पथिक
कनीं	-	छोटे कण
केतिक	-	कितना
तिय	-	पत्नी
चली जल च्वै	-	आँसू बह चले
बनिता	-	स्त्री
बिलोकहु	-	देखो
मोहि-सी ह्वै	-	मुझ जैसी होकर, मेरे समान भाव से
बिथकीं	-	चकित हुईं
अनूप	-	जिसकी उपमा न दी जा सके
अयानी	-	अज्ञानी
पबि	-	वज्र
पाहनहू	-	पत्थर से
काजु अकाजु	-	कर्तव्य-अकर्तव्य, उचित-अनुचित
जोगु	-	योग्य
किमि के	-	कैसे

11. देवताओं का अंचल : कुलू

(प्रस्तुत यात्रा-वृत्तांत लेखक की रचना 'अरे यायावर रहेगा याद' से उद्धृत है। लेखक शहरी कोलाहल से दूर प्रकृति की गोद में बैठकर स्वास्थ्य-लाभ करने के साथ-साथ उपन्यास-लेखन की इच्छा से देवभूमि कुलू आता है। वह जेल के घुटन भरे माहौल से निकलकर अप्रतिम प्राकृतिक वैभव का दर्शन करता है और भावाभिभूत हो जाता है। इस लेख में कुलू-मनाली के निवासियों की सहज धार्मिक आस्थाओं, रीति-रिवाजों को, वहाँ के विभिन्न रमणीक स्थलों के सौंदर्य एवं महत्त्व को लेखक ने चित्रित किया है।)

'यहाँ से देवताओं का अंचल आरंभ होता है', इसका बड़ा बढ़िया प्रमाण यह मिला कि मानवों की सृष्टि मोटर को देवताओं की सृष्टि मानव के पीछे-पीछे चलना पड़ा। मंडी से कुलू-प्रदेश में जाते हुए व्यास नदी को रस्सी के झूलना पुल से पार करना पड़ता है, उस पर से लारी का जाना काफ़ी खतरनाक है। लारी चार मील की रफ़्तार से तेज़ न चले, इसका प्रबंध यह किया गया है कि पुल का चौकीदार अपनी पीठ पर एक तख्ती टाँगे (जिस पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है – 'चार मील रफ़्तार। इस आदमी के पीछे-पीछे इसी की चाल से चलो!') आगे-आगे चलता है और मोटर उसके पीछे चलती है। पुल के दोनों ओर पहरा पड़ा रहता कि चौकीदार की अनुमति के बिना कोई आर-पार न जा सके।



दस बजे के करीब हम लोग औट पहुँचे। यहाँ से एक सड़क शिमला जाती है। पहले यह मार्ग पैदल चलने वाले साहसिक लोगों के लिए बड़ा भारी आकर्षण था; लेकिन अब पक्की सड़क बन जाने से शिमला से फ़ैशनेबल सैलानी 'वीक-एंड' बिताने के लिए मोटर में बैठकर सीधे मनाली आ सकते हैं। आसपास का सौंदर्य अब भी वही है, लेकिन चमत्कार नष्ट हो गया है।

और कुछ आगे से एक मार्ग मणिकर्ण भी जाता है। मणिकर्ण तीर्थ स्थान है। यहाँ गरम पानी के कई सोते हैं, जिनकी उष्णता अलग-अलग है। कोई नहाने के लिए ठीक है, तो किसी में चावल उबाले जा सकते हैं।

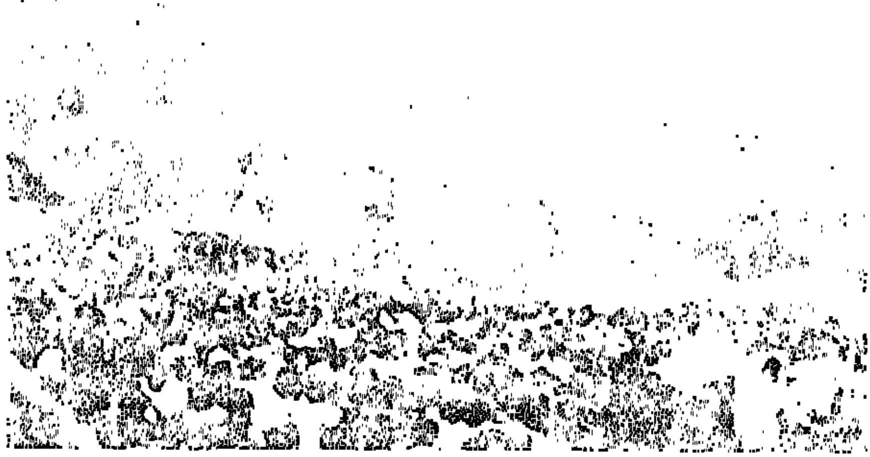
व्यास नदी के किनारे-किनारे सुंदर किंतु कहीं-कहीं खतरनाक सड़क पर बढ़ते हुए हम लोग बारह बजे कुलू पहुँच गए।

कुलू प्राचीन हिंदू-सभ्यता का गहवारा है। यहाँ प्रत्येक कस्बे और ग्राम के अपने-अपने देवता हैं, जो अपने-अपने मंदिरों में बैठे हुए लोगों की पूजा पाते हैं और साल में एक बार अपने-अपने रथों में बैठकर कुलू के रघुनाथ मंदिर में प्रतिष्ठित राम की उपासना के लिए जाते हैं। सैकड़ों देवी-देवताओं और उनके मंदिरों के कारण, और इस विराट देव-सम्मेलन के कारण ही, कुलू प्रदेश का नाम देवताओं का अंचल (वैली ऑफ़ दि गॉड्स) पड़ा है। ये सब असंख्य देवी-देवता और ऋषि-मुनि यहाँ के आदिम निवासियों द्वारा पूजे जाते थे। यहाँ पर दशहरे के दिन विजयी राम का उत्सव होता है, जिसमें आसपास के सब देवी-देवता रथों में बिठा कर लाए जाते हैं। इस विराट उत्सव में, ऐसा सुनने में आता है, हज़ार-हज़ार तक देवता शामिल होते हैं।

कुलू-प्रांत में व्यास-कुंड तथा व्यास मुनि, वसिष्ठ आदि ऋषि-मुनियों के स्थान हैं, पांडवों के मंदिर हैं, भीम की पत्नी हिडिंबा 'देवी' भी पूजा पाती है; और सबसे बढ़कर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वहाँ पर 'मनु रिखि' या मनु भगवान का भी एक मंदिर है। शायद भारत में एकमात्र स्थान है, जहाँ मानवता का यह स्वयंभू आदिम प्रवर्तक मंदिर में प्रतिष्ठित हो और पूजा पाता हो।

दशहरे के अवसर पर यहाँ बड़ा भारी मेला भी लगता है। साल भर का व्यापार प्रायः इस एक दिन में ही हो जाता है – बाहर से आए हुए यात्रियों के लिए बनी हुई देशी-अंग्रेज़ी दुकानों और कुछ होटलों या पंसारी-हाट की बात अलग है – इसलिए यहाँ पर ग्राहक और विक्रेता दोनों ही बड़ी उमंगें लेकर आते हैं। रंग-बिरंगे कंबल, पट्टू-पट्टियाँ, पशमीना, 'चरू'

और अन्य प्रकार की खालें – रीछ की, मृग की, बाघ की, कभी-कभी बर्फ़ के बाघ (स्नो-लेपर्ड) की; तरह-तरह के जूते, मोज़े, सिली-सिलाई पोशाकें, टोपियाँ, बाँसुरी, बरतन, पीतल और चाँदी के आभूषण, लकड़ी,



हड्डी और सींग की कंघियाँ, देशी और विदेशी काँच, बिल्लौर और पत्थर के मनकों के हार – न जाने क्या-क्या चीज़ें वहाँ आती हैं और देखते-देखते बिक जाती हैं – दिन-भर में हजारों की संपत्ति हाथ बदल लेती है····तमाशे होते हैं, नाच होते हैं, गाना-बजाना होता है, जगमग रोशनी होती है।

उस दिन कुलू में दो घंटे ठहरे। भोजन किया और फिर लारी में बैठकर आगे बढ़े। मनाली देवताओं के अंचल का ऊपरी छोर-कुलू से 23 मील है। अध-बीच में कटराई की बस्ती है।

कटराई से चलकर मोटर कलाथ होती हुई मनाली जा पहुँची। मनाली या मुनाली ने यह नाम मुनाल नामक पक्षी से पाया, जो यहाँ बहुतायत से

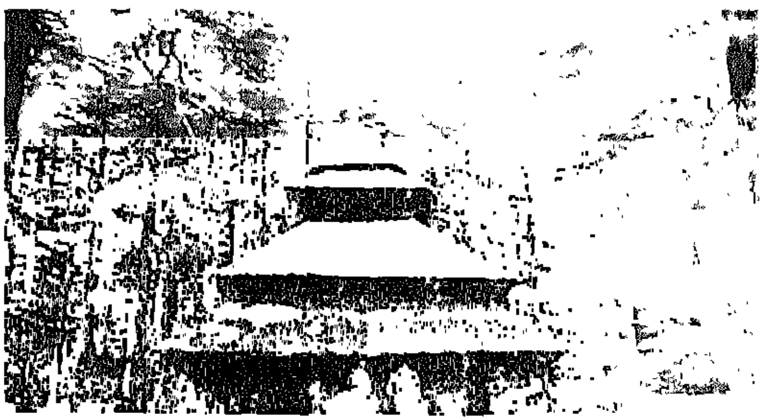
होता है। फ़ेज़ेंट जाति का हिमालय का यह पक्षी अत्यंत सुंदर होता है। इसके संबंध में यहाँ के लोगों में कई किंवदंतियाँ भी सुनने में आती हैं। लेकिन मैदानी भाग में रहने वाले लोग मनाली को वहाँ के सेबों के कारण ही जानते हैं। सेब और नाशपाती के लिए मनाली शायद संसार में सबसे बढ़िया स्थान है।

मनाली की दो बस्तियाँ हैं – एक तो बाहर से आकर बसे हुए लोगों द्वारा बनाए हुए बँगलों और बाज़ार वाली बस्ती, जो दाना कहलाती है; और दूसरी उससे करीब मील-भर ऊपर चलकर खास मनाली गाँव की। मोटर दाना तक जाती है। दाना से सड़क फिर व्यास नदी पार करके रोहतांग की जोत से होकर लाहौल को चली जाती है। इसी मार्ग पर मनाली से दो मील की दूरी पर वसिष्ठ नाम का गाँव है, जहाँ गरम पानी के कुंड हैं और वसिष्ठ मंदिर भी है। कहते हैं कि वसिष्ठ ऋषि यहीं तपस्या करते-करते पाषाण हो गए थे; पाषाण मूर्ति वहाँ पूजी भी जाती है। यहाँ पानी में गंधक की मात्रा काफ़ी है, और यह स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा है।

रोहतांग की जोत पर ही व्यास-कुंड है। यहाँ से कुछ मील हटकर व्यास मुनि का स्थान है, जहाँ से व्यास नदी का उद्गम है। रोहतांग का मार्ग बहुत रमणीक है। व्यास नदी के वेग से किस तरह पहाड़ के पहाड़ कट गए हैं, वह भी देखने की चीज़ है। कहीं-कहीं तो नदी आठ-दस फुट चौड़ी दरार में चार-पाँच सौ फुट नीचे जाकर अदृश्य हो गई है, केवल स्वर सुनाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि व्यास नदी बहुत तीव्र गति से नीचे उतरती है–अपने मार्ग के पहले पाँच मील में जितना नीचे उतर आती है, वह उतना अगले पचास मील में नहीं, और उसके बाद में पाँच सौ मील में नहीं।

रोहतांग की जोत के दूसरी पार कोकसर पड़ाव है। यहाँ जाते हुए बर्फ़ के सौंदर्य का जो दृश्य दीखता है, मैंने दूसरा नहीं देखा। उसका न वर्णन हो सकता है, न चित्र खिंच सकता है। कुछ मीलों के दायरे का एक प्याला-सा बना हुआ है, जिसके सब ओर ऊँची-ऊँची हिमावृत चोटियाँ, उससे कुछ नीचे पहाड़ों के नंगे काले अंग, और प्याले के बीच में फिर बर्फ़ से छाया हुआ मैदान – मानो अभिमानी पर्वत-सरदारों ने अपना शीश और कटि-प्रदेश तो ढक लिया है; लेकिन छाती दर्प से खोल रखी है"। इस स्थान से तीन नदियों का उद्गम है, ऊपर से व्यास, मध्य से चंद्रा और भागा, जो आगे चलकर मिल जाती हैं।

दाना के दूसरी ओर पहाड़ के ढलान पर चीड़ के जंगल में हिडिंबा देवी का मंदिर है। एक चीड़ वृक्ष के तने के आसपास बना हुआ यह लकड़ी का चार-मंजिला मंदिर दर्शनीय है। इसके द्वारों पर नक्काशी का जो काम है, वह कई सौ बरस पुराना है। एक पट्टे पर लेख भी खुदा हुआ है। मंदिर से मनाली की ओर जाते हुए मार्ग दो चट्टानों के बीच होकर



गुज़रता है, जो अपने आकार के कारण 'देवी का चूल्हा' के नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं कि हिडिंबा देवी मनुष्य भून-भूनकर अपना भोजन तैयार करती थी। मनाली की बस्ती के ऊपरी छोर पर मनु रिखि का मंदिर छोटा है, विशेष सुंदर भी नहीं है; लेकिन मनु का एकमात्र मंदिर होने के कारण विशेष महत्त्व रखता है।

मैं मनाली आया तो था स्वास्थ्य-लाभ करने, लेकिन सबसे बड़ी आकांक्षा यह थी कि एकांत में रहकर एक बड़ा-सा उपन्यास लिख डालूँगा। जेल में रहते हुए उसका ढाँचा तैयार हुआ था, और वह मैंने अंग्रेज़ी में पूरा लिख भी डाला था; लेकिन जेल के चार वर्षों ने मुझे यह भी दिखा दिया था कि उसमें अभी लड़कपन बहुत है। एक बड़े केनवस पर मैंने एक विद्रोही के पूरे जीवन का चित्र खींचने की कोशिश की थी और जहाँ तक चित्र का संबंध था वह काफ़ी सच्चा उतरा था; पर जिस भूमि पर वह खींचा गया था – भारतीय समाज और संस्कृति – उसका ज्ञान मेरा अधूरा ही था, और इसलिए चित्र ठीक नहीं था। अब नए अनुभव के आधार पर परिवर्तन और परिष्कार करके मैं उसे फिर हिंदी में लिखना चाहता था। उपन्यास को मैं जीवन-दर्शन मानता हूँ, और इस दृष्टि से गंभीर चीज़ लिखने के लिए एकांत ज़रूरी था। तभी मैं 'परिचित सभ्य' लोगों की बस्ती से अलग मनाली में आ जमा था।

मनाली स्थिति के कारण ही नहीं, सौंदर्य के कारण भी देवताओं के अंचल का सुनहला ऊपरी छोर है। दृष्टि-क्षेत्र में सीखचे-ही-सीखचे देखने की आदी मेरी आँखें इस विराट सौंदर्य को पीती जाती थीं और मानो अपने पर विश्वास नहीं कर पाती थीं···सीखचों का संस्कार इतना गहरा पड़ गया था कि मैं बाहर बिखरी हुई सौंदर्य-राशि को देखकर भी भीतर में

पुरानी-पुरानी बंदी-जीवन में स्मृतियाँ निकालता जाता था–जैसे शाही पोशाक में लिपटकर भी भिखमंगा अपनी फटी हुई और थिगरों से भूषित गुदड़ी को नहीं भूलता। लेकिन मनाली ने मानो उन स्मृतियों पर अपनी छाप डाल दी – वे अपने आप में कटु स्मृतियाँ मानो सुंदरता के एक ढाँचे में ढल निकलने लगीं।

अगले दिन प्रातःकाल ही देवताओं के अंचल में बैठे हुए एक क्षुद्र मानव ने पाया कि वह भी देवों का समकक्षी हो गया है, स्रष्टा हो गया है : वह लिखने लगा…।

– सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. लारी चार मील की रफ़्तार से तेज़ न चले, इसके लिए वहाँ क्या प्रबंध किया गया था?
2. मणिकर्ण के गरम पानी के स्रोतों की क्या विशेषता है?
3. कुलू प्रांत में कौन-कौन से दर्शनीय स्थान हैं?
4. दशहरे के उत्सव को विराट उत्सव क्यों कहा गया है?
5. मनु को मानवता का स्वयंभू आदिम प्रवर्तक क्यों कहा गया है?
6. लेखक ने मनाली के नामकरण के पीछे क्या कारण बताया है?
7. हिडिंबा के मंदिर की क्या विशेषता है?

(ख) लिखित

1. "आसपास का सौंदर्य अब भी वही है, लेकिन चमत्कार नष्ट हो गया है।" ऐसा कहने के पीछे लेखक के मन में क्या विचार रहे होंगे?
2. कुलू में दशहरे का उत्सव किस प्रकार मनाया जाता है?
3. रोहतांग के पहाड़ों में कहीं-कहीं व्यास नदी क्यों अदृश्य रहती है?
4. कोकसर के मार्ग के बर्फानी सौंदर्य के दृश्य का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
5. लेखक जेल जीवन की पुरानी स्मृतियों को छोड़ना चाहते हुए भी क्यों नहीं छोड़ पा रहा था?
6. लेखक को अपने लिखे उपन्यास में 'लड़कपन' क्यों लगा?
7. "मैं 'परिचित सभ्य' लोगों की बस्ती से अलग मनाली में आ जमा था।" इस वाक्य में लेखक का 'परिचित सभ्य' से क्या तात्पर्य है?

भाषा-अध्ययन

1. पाठ में कई ऐसे शब्द भी आए हैं जिनके एक से अधिक अर्थ मिल जाते हैं; जैसे – 'सोते' (स्रोत, झरना, सोना, क्रिया), हार (माला, पराजय)
   निम्नलिखित शब्दों के एक से अधिक अर्थ बताइए –
   सोना, कल, तीर, कर, पद, मत, अंबर
2. पाठ में कुछ ऐसे शब्द आए हैं जो ध्वनि और रूप की दृष्टि से समान लगते हैं किंतु अर्थ की दृष्टि से भिन्न हैं। इन्हें समध्वन्यात्मक या समरूपी भिन्नार्थक शब्द कहते हैं; जैसे – आदी (अभ्यास) और आदि (वगैरह), खुदा (खोदना का भूतकालिक रूप), खुदा (ईश्वर)
   निम्नलिखित समध्वन्यात्मक शब्दों के अर्थ स्पष्ट करते हुए वाक्य प्रयोग कीजिए –
   ग्रह-गृह, अपेक्षा-उपेक्षा, उपकार-अपकार, क्रम-कर्म, उधार-उद्धार
3. पाठ में अनेक पुनरुक्त शब्द आए हैं। ये संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अन्य के रूप में उपलब्ध हैं; जैसे – किनारे-किनारे (संज्ञा), अपने-अपने (सर्वनाम), तेज़-तेज़ (विशेषण), देखते-देखते (क्रिया), आगे-आगे (अव्यय)। इस प्रकार के पुनरुक्त शब्दों के दो-दो रूप लिखिए।

4. पाठ में कई स्थलों पर क्रियाविशेषण रूप मिलते हैं। क्रियाविशेषण के रीतिवाचक, परिमाणवाचक, स्थानवाचक और कालवाचक प्रकार हैं; जैसे –
   – व्यास नदी बहुत **तीव्र गति** से उतरती है। (रीतिवाचक)
   – पानी में गंधक **काफी मात्रा में** मिलता है। (परिमाणवाचक)
   – हम लोग कुलू में **दो घंटे** ठहरे। (कालवाचक)
   – खतरनाक सड़क **व्यास नदी के किनारे-किनारे** थी। (स्थानवाचक)

   क्रियाविशेषणों के उपर्युक्त प्रकारों के दो-दो वाक्य लिखिए।

योग्यता विस्तार

1. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन द्वारा लिखित 'अरे यायावर रहेगा याद' पुस्तक से लेखक के अन्य यात्रा-वृत्तांतों को पढ़िए।
2. इस लेख के अतिरिक्त किसी अन्य हिंदी के साहित्यकार द्वारा लिखे गए यात्रा-वृत्तांतों की सूची बनाइए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

झूलना पुल	–	रस्सियों का बना झूले-सा पुल
गहवारा	–	पालना, विकास स्थली, वह स्थान जहाँ किसी को पाल-पोस कर बड़ा किया गया हो
स्वयंभू	–	स्वयं पैदा हुआ
चरू	–	गर्भवती भेड़ का पेट चीर कर निकाले गए बच्चे की खाल
अंचल	–	किनारा, तट
वीक-एंड	–	साप्ताहिक अवकाश का अंतिम दिन
पट्टू	–	एक प्रकार का मोटा ऊनी कपड़ा
पाषाण	–	पत्थर
उद्गम	–	नदी या झरने के निकलने का स्थान
हिमावृत	–	बर्फ़ से घिरा हुआ

12. सरस्वती बहती रहे

(प्रस्तुत पाठ में लोक जीवन में व्याप्त उन पारंपरिक जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक आचरणों की चर्चा की गई है जिनमें जल-संरक्षण एवं जल-आपूर्ति को पुण्य कार्य माना जाता है और नदियों को माता के समान पूज्य। ऐसी मान्यताओं को पोषित करने वाली सरस्वती नदी की सभ्यता पर तथा जल-संकट की दृष्टि से सरस्वती नदी के जल स्रोत की उपयोगिता पर यह पाठ प्रकाश डालता है। इससे पर्यावरण के रक्षण में भारतीय संस्कृति की भूमिका की जानकारी मिलती है।)

पृथ्वी इस ब्रह्मांड का एकमात्र ऐसा ज्ञात ग्रह है जिस पर जल है। इसी जल के कारण पृथ्वी पर जीवन है। जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। आज विश्व के सामने जल का संकट खड़ा हो रहा है। इसके निराकरण के लिए बने 'विश्व-जल मंच' के सम्मेलनों में प्रदूषण रहित पेय जल की चिंता मुखर होती रही है। इस मंच द्वारा जल-रक्षा की रणनीतियाँ बनाई जाती हैं। जल की एक-एक बूँद की रक्षा के लिए लोगों में कर्तव्य-बोध जाग्रत किया जा रहा है। इसी कार्य के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से वर्ष 2003 को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जल के नाम समर्पित वर्ष घोषित किया गया और 22 मार्च को 'जल-दिवस'।

विश्व के करोड़ों लोगों को स्वच्छ पेय जल उपलब्ध नहीं होता। हजारों लोग पेय जल के अभाव में दम तोड़ देते हैं। जल संकट के लिए उत्तरदायी कारणों में प्रमुख हैं – उद्योगों द्वारा फैलता प्रदूषण, मौसम में

हो रहा प्रतिकूल परिवर्तन, जनसंख्या की वृद्धि, शहरीकरण, ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका की कमी से शहर की ओर लोगों का पलायन, त्रुटिपूर्ण जल प्रबंधन और जल-स्रोतों पर बढ़ता हुआ व्यावसायिक एकाधिकार। इनसे सामान्य जन-जीवन जल की आपूर्ति से वंचित होता जा रहा है।

हमारी संस्कृति में नदियों को माता कहा जाता है, क्योंकि इनके तटों पर मानव सभ्यताएँ फली-फूलीं। जल को समृद्धि का कारण माना जाता है। समुद्र को रत्नाकर और लक्ष्मी को समुद्र के मंथन से निकली हुई देवी कहने का अभिप्राय भी यही है। कवि रहीम ने यूँ ही तो नहीं लिखा –

रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती-मानुस-चून।।

यह सच है कि रहीम के इस दोहे में आए पानी शब्द का अर्थ केवल पानी नहीं है, उन्होंने पानी को चमक, मान-प्रतिष्ठा और जल के अर्थ में लिया है। पर, क्या पानी के सभी अर्थों में आपसी संबंध नहीं है? जल के बिना जीवन नहीं रहेगा तो चमक और मान-प्रतिष्ठा कहाँ होगी। जल का रहना तो पहली ज़रूरत है। इसके न रहने पर जीवन को विनाश से उबारा नहीं जा सकता। पानी बचा रहे तो धन समृद्धि, मान-प्रतिष्ठा और जीवन बचाया जा सकता है। रहीम ने इस दोहे के माध्यम से पानी के बिना सब कुछ सूना या शून्य हो जाने के खतरे से हमें सावधान किया है।

हमारी परंपरा ने जल-संरक्षण के लिए कोई कानून और दंड विधान नहीं बनाया। उसने एक ऐसे कर्तव्य-बोध को जन्म दिया, जिसमें सबकी प्यास अपनी प्यास के समान लगे, सभी एक दूसरे की तृप्ति के लिए जल पिलाएँ। जल प्रकृति द्वारा दिया हुआ जीवन का आधार है। इसे हर लोग एक दूसरे को बाँटें, इसकी रक्षा करें – जैसे कि हम एक दूसरे को जीवन

बाँट रहे हों, एक दूसरे के जीवन की रक्षा कर रहे हों। हमारी संस्कृति का दिया हुआ यह कर्तव्य-बोध जल के संरक्षण और समुचित प्रबंधन के लिए ही नहीं, अपितु संपूर्ण जीव-जगत की रक्षा के लिए भी वरदान है।

यह जल ही है जो जन-जन को जोड़ता है और जुड़ाता है। यही हमारे देश को एक छोर से दूसरे छोर तक बाँधता है। गोमुख के जल से रामेश्वरम् का अभिषेक करने पर हमारा अस्तित्व सबल होता है और हमारा मनोरथ सफल। जल से जुड़ा हमारा सांस्कृतिक चरित्र सकारात्मक है। हमारे समाज में केवल अपने लिए ही नहीं, पशु-पक्षियों के लिए भी अलग से जल की व्यवस्था की जाती है। अनजान राही-बटोहियों की प्यास को अपनी प्यास समझकर उनकी प्यास बुझाने के लिए प्याऊ लगवाए जाते हैं। कुएँ और तालाब खुदवाने के पुण्य कार्य भी इसीलिए किए जाते हैं। हमारा समाज स्वार्थ और परमार्थ दोनों के स्वाद जानता है। उसे पता है, मिल-बाँटकर खाने का सुख क्या होता है, मिल-जुलकर रहने क। बल क्या होता है।

आज जल के बढ़ते हुए संकट को दूर करने के लिए दिन प्रतिदिन सूखती जा रही और विलुप्त नदियों को पुनर्जीवित करने के कार्य हो रहे हैं। वर्षा के जल को संचित करने की विधियों का उपयोग किया जा रहा है। जल संरक्षण के पारंपरिक ज्ञान और उसके सांस्कृतिक पक्ष को महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है। इस दृष्टि से हिमालय की पेंटा दून घाटी से निकल लगभग 'सोलह सौ किलोमीटर की यात्रा पूरी करने वाली सरस्वती नाम की विलुप्त नदी की ओर देखा जा रहा है। कभी सरस्वती नदी समुन्नत मानव सभ्यता के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान के कारण माताओं में श्रेष्ठ माता कही गई, अपनी वेगवती विशाल जलधारा के कारण



नदियों में उत्तम नदी मानी गई। इसकी शक्ति से सिंचित होकर मानव ने उन्नत ज्ञान और विद्या प्राप्त की, इसलिए यह देवियों में सर्वोपरि देवी समझी गई। ऋग्वेद के ऋषियों ने इसकी 'अम्बितमे-नदीतमे-देवितमे सरस्वति!' कहकर वंदना की थी।

सरस्वती का जल-प्रवाह विलुप्त हो गया, इसके तट पर विकसित सभ्यता पुरावशेष बन गई है, परंतु जनमानस में इसकी सांस्कृतिक धारा अभी भी प्रवहमान है। इसके देवी रूप की स्तुति और अर्चना आज भी प्रचलित है, लोककंठ इसके सुमिरन में अभी भी लगा हुआ है। इसने एक ऐसी संस्कृति को जन्म दिया, जिसमें धरती और नदियों को माता और स्वयं को उसके पुत्र रूप में माना गया। इसी मातृत्व की भावना से हमने प्राणियों के प्रति भ्रातृत्व और संपूर्ण विश्व के प्रति बंधुत्व सीखा। इसी से हमारी परस्परावलंबी संस्कृति विकसित हुई।

हजारों वर्षों से आज तक अनेक जनश्रुतियों द्वारा जनमानस में स्मृति बनकर प्रवाहित होती रहने वाली अंत:सलिला सरस्वती नदी का उल्लेख ऋग्वेद में चौंसठ बार हुआ है। इन गरिमामय उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि अपने समय में सरस्वती विशाल नदी थी। ऋग्वेद काल में ऋषिगण

सरस्वती नदी के किनारे रहते थे। इसकी दो और सहायक नदियाँ थीं – दृषद्वती और अपाया। आज वे भी सूख गई हैं। पर इनकी पुरातन धाराओं की खोज भी भू-वैज्ञानिकों ने कर ली है।

लगभग चार हज़ार वर्ष पहले की भू-गर्भ संबंधी दो घटनाओं से सरस्वती का प्रवाह क्षीण हो गया। सतलज (शतद्र) सरस्वती की सहायक नदी थी जो सरस्वती से अलग होकर सिंधु नदी की तरफ़ चली गई और दूसरी ओर यमुना ने भी सरस्वती के प्रवाह को अपने में समेट लिया। आज भी यमुना और सरस्वती का जल एक साथ मिलकर बह रहा है। इसलिए कहा जाता है कि प्रयाग में गंगा-यमुना-सरस्वती का संगम हुआ है। इस स्थान को 'त्रिवेणी' भी कहते हैं। इस प्रकार जल-प्रवाह विलुप्त हो जाने से सरस्वती घाटी में बसे लोगों का जीवन प्रभावित हुआ, वे वहाँ से पलायन करने लगे और सरस्वती की गाथा जनमानस में व्याप्त होकर रह गई।



उपग्रह की आँखों ने सरस्वती नदी की टोह ली है, इसके प्रवाह मार्ग के चित्र लिए गए हैं। वह आज भी धरती की गहरी परतों में चुपचाप बहती हुई सागर तक चली जा रही है। वह नदी धरती में तीस से साठ मीटर की गहराई में प्रवहमान है। जैसलमेर (राजस्थान) में आठ स्थानों पर उपग्रहीय तथा भू-भौतिकीय सर्वेक्षणों से इसकी जल-धारा का पता लगाया गया है। जैसलमेर जिले के फोहड़ा गाँव में इसके जलमार्ग में नलकूप लगाने पर इसकी वेगवती धारा बिना पंप के स्वत: फूट कर बाहर निकलने लगी। यह पेयजल की शुद्धता की दृष्टि से उत्तम है। (कुछ स्थानों पर इस जल का उपयोग कृषि के लिए होता है।)

कृषि की उपयोगिता के कारण कभी सरस्वती नदी को उर्वरता की देवी 'सिनिवाली' कहा जाता था। सूरतगढ़ (राजस्थान) में कृषि के लिए इसके भूमिगत जल का पर्याप्त उपयोग होता है। राजस्थान के जालौर जिले में सरस्वती नदी के प्रवाह मार्ग में अथाह भू-जल का स्रोत मिला है। गत चार दशकों से इस क्षेत्र में अनेक नलकूपों द्वारा कृषि कार्य और पीने के लिए भरपूर मात्रा में पानी निकाला जाता रहा है, इसके बाद भी वहाँ के जल स्तर में गिरावट नहीं आई है।

इसके भूमिगत मीठे जल की धारा के पूरब और पश्चिम की ओर खारा जल पाया गया है। भू-वैज्ञानिकों का मानना है कि सरस्वती नदी में इतना समृद्ध जल प्रवाह है जिससे मरु प्रदेशों को हरा-भरा किया जा सकता है और प्रचुर मात्रा में पेय जल की आपूर्ति भी की जा सकती है।

मरुस्थल की नदियों के बारे में यह कहा जाता है कि वे न तो कभी सूखती हैं, न कभी मरती हैं। समय के साथ वे या तो अपने प्रवाह की दिशा बदल लेती हैं या उनका जल स्तर नीचे चला जाता है। सरस्वती नदी

के संबंध में भी यह कथन सत्य माना जा सकता है। आदिबद्री से प्रभासपाटन तक बहने वाली सरस्वती नदी के जल स्रोत को महाभारत काल में बलराम ने पलाश वृक्षों के पास से निकलते देखा था। तब से आज तक इसका जल स्रोत आदिबद्री में वनस्पतियों के बीच से रिस रहा है।

इसके तटों पर हुए उत्खनन में सैकड़ों नगरीय सभ्यता के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं। इनमें मिट्टी से बनी स्त्री और वृषभ की मूर्तियाँ हैं। स्त्री मूर्तियों के शरीर पर वस्त्र और गले में सुंदर आभूषण हैं। इनके सिर पर बाल के जूड़े हैं। इनके अतिरिक्त चूड़ी के टुकड़े, धातु की अँगूठी, ताँबे के सिक्के भी मिले हैं। इन उत्खननों में हड़प्पा और वैदिक काल के पुरावशेष मिलते हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि ये दोनों सभ्यताएँ एक दूसरे से संबंधित थीं।

सरस्वती नदी केवल विशाल जल-प्रवाह ही नहीं थी, अपितु इसने जिस सभ्यता को सींचकर विकसित किया, उस सभ्यता के लोगों ने पृथ्वी, आकाश, अंतरिक्ष, सूर्य, चंद्रमा, वायु, अग्नि, जल इत्यादि को एक ही विराट पुरुष के विभिन्न अंग माना, ग्रहों-नक्षत्रों से ऋतु-चक्र के संबंध – दिन, सप्ताह, पक्ष, मास और वर्ष के संबंध बताए, पूरी सृष्टि को 'देवताओं की कविता' कहा, उसे अपनी निर्मल वाणी से गाया, सबके सुख की कामना की और उन्नत आचार, विचार के संदेश दिए। आज जब प्रकृति में अस्वाभविक परिवर्तनों से संत्रास बढ़ रहा है, पर्यावरण के विनाश की लीला चल रही है, जीव-जगत के आधार जल पर भी संकट छा रहा है, हमें फिर से प्रकृति-प्रेम की प्रेरणा और प्राणियों के कल्याण का मंत्र देने वाली सरस्वती को याद करना होगा।

– मनोज मेहता

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2003 को जल के नाम समर्पित वर्ष क्यों घोषित किया?
2. वैदिक ऋषियों ने सरस्वती की वंदना के लिए किन-किन विशेषणों का प्रयोग किया है?
3. सरस्वती की जलधारा का पता लगाने के लिए क्या प्रयास किए गए हैं?
4. सरस्वती को 'सिनिवाली' क्यों कहा गया है?
5. मरुस्थल की नदियों की क्या विशेषता बताई गई है?
6. सरस्वती के तटों पर किस संस्कृति के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं?

(ख) लिखित

1. जल संकट के लिए मुख्यत: कौन से कारक उत्तरदायी हैं?
2. लेखक रहीम के दोहे के माध्यम से किस खतरे के प्रति सतर्क होने के लिए कहता है?
3. हमारी संस्कृति ने जल संरक्षण के लिए किस प्रकार के कर्तव्य बोध को जन्म दिया है?
4. हमारी संस्कृति में सरस्वती नदी को इतना महत्त्व क्यों दिया गया है?
5. जल संकट को दूर करने के लिए आज क्या-क्या प्रयास हो रहे हैं?
6. टिप्पणी कीजिए कि सरस्वती नदी केवल विशाल जल प्रवाह ही नहीं थी।
7. आशय स्पष्ट कीजिए –
   (क) यह जल ही है जो जन-जन को जोड़ता है और जुड़ाता है।
   (ख) हमारा समाज स्वार्थ और परमार्थ दोनों के स्वाद जानता है।

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों की वर्तनी शुद्ध कीजिए –
   ब्रम्हांड, व्यवसायिक, जल-स्त्रोत, सभ्याताएँ, आजीवीका, पुर्नजीवि, मात्रत्व, उपगृह, विधमान, मरूस्थल

2. पाठ में विशेषण-विशेष्य के अनेक रूप आए हैं। जिस पद की विशेषता बताई जाए वह 'विशेष्य' कहलाता है और जिस पद से विशेषता बताई जाए, वह 'विशेषण' है; जैसे – 'पेय जल', इसमें 'पेय' विशेषण है और 'जल' विशेष्य है।
   निम्नलिखित पद रूपों में विशेषण और विशेष्य छाँटिए –
   सांस्कृतिक-चरित्र, पारंपरिक ज्ञान, विलुप्त नदी, मानव-सभ्यता, निर्मल वाणी, सुंदर आभूषण, विशाल जलधारा, अंतर्राष्ट्रीय स्तर, पारंपरिक मान्यता, व्यावसायिक एकाधिकार।
3. निम्नलिखित शब्दों में से उदाहरण के अनुसार उपसर्ग और प्रत्यय छाँटते हुए मूल शब्द भी लिखिए –

		उपसर्ग		*मूल*		*प्रत्यय*
उदाहरण : वैज्ञानिक	=	व	+	ज्ञान	+	इक

   पुनर्जीवित, अनावश्यक, विफलता, अमानवीय
4. उदाहरण के अनुसार निम्नलिखित वाक्यों को बदलिए –
   उदाहरण : इस संकट से मुक्ति का रास्ता खोजा गया है।
   ⇒ इस संकट से मुक्ति का रास्ता खोजा जा रहा है।
   (क) जल-संरक्षण के लिए जनता को जाग्रत किया गया है।
   (ख) सामान्य जन-जीवन जल की आपूर्ति से वंचित हुआ है।
   (ग) हिमालय से निकली विलुप्त नदी सरस्वती की ओर ध्यान दिया गया है।
   (घ) कुएँ और तालाब खुदवाने के पुण्य कार्य भी किए गए हैं।
   (ङ) सरस्वती धरती की गहरी परतों में चुपचाप सागर तक चली गई है।

योग्यता-विस्तार

भारत की संस्कृति और भारतीय नदियों के संबंध में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए भगवतशरण उपाध्याय द्वारा लिखित पुस्तकों 'भारतीय संस्कृति की कहानी' और 'भारतीय नदियों की कहानी' को पढ़िए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

निराकरण	-	दूर करना, दूर हटाना, समाधान करना
रणनीतियाँ	-	कार्यक्रम, योजनाएँ
पलायन	-	भागने की क्रिया या भाव
रत्नाकर	-	रत्नों की खान (समुद्र)
'रहिमन''''''चून'	-	पानी शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है – चमक, प्रतिष्ठा और जल
संरक्षण	-	हिफ़ाज़त, रक्षा करने की क्रिया
बटोही	-	पथिक, मुसाफ़िर
विलुप्त	-	जिसका लोप हो गया है, अदृश्य
समुन्नत	-	पूर्ण रूप से उन्नत
पुरावशेष	-	पुराने अवशेष, बचे हुए
परस्परावलंबी	-	एक दूसरे पर निर्भर, परस्पर अवलंबी
जनश्रुतियाँ	-	लोक में प्रचलित बातें, किंवदंतियाँ
अंत:सलिला	-	धरती के अंदर ही अंदर बहने वाला
टोहना	-	खोजना, पता लगाना
उपग्रह	-	आकाशीय पिंड जो ग्रहों के चारों ओर घूमता है (सेटेलाइट)
भू-भौतिकीय	-	पृथ्वी की भौतिक संरचना से संबंधित
सर्वेक्षण	-	पूरी जाँच-पड़ताल के साथ निरीक्षण करना
भूमिगत	-	भूमि के नीचे
उर्वरता	-	उपजाऊपन
सिनिवाली	-	वैदिक काल की एक देवी, कृषि की देवी, एक नदी, सरस्वती नदी
आदिबद्री	-	एक स्थान
उत्खनन	-	खुदाई (विशेषतया ऐतिहासिक महत्त्व के स्थानों की)
हड़प्पा	-	सिंधु क्षेत्र में पनपी प्राचीन सभ्यता
संत्रास	-	अत्यधिक भय, आतंक

अम्बितमे-नदीतमे - देवितमे सरस्वति! ऋग्वेद के इस मंत्र में सरस्वती को ये संबोधन दिए गए हैं। इनका क्रमशः अर्थ है अम्बितमे – माताओं में उत्तम, नदीतमे – नदियों में उत्तम, देवितमे – देवियों में उत्तम। पूरा मंत्र इस प्रकार है –

अम्बितमे-नदीतमे-देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि॥

(ऋ. सं. 2, 41, 16)

13. सत्कर्तव्य

(प्रस्तुत कविता में बताया गया है कि अपनी मातृभूमि और उसके निवासियों की सेवा करना हमारा सबसे पहला कर्तव्य है। सृष्टि में जड़ और चेतन जब सभी कर्म में लीन हैं तो मनुष्य को अपने सारे स्वार्थ छोड़कर अपने देश और देशवासियों के प्रति कर्तव्य को निभाना चाहिए।)

जग में सचर-अचर जितने हैं, सारे कर्म निरत हैं।
धुन है एक-न-एक सभी को, सबके निश्चित व्रत हैं।
जीवन-भर आतप सह वसुधा पर छाया करता है।
तुच्छ पत्र की भी स्वकर्म में कैसी तत्परता है।।

रवि जग में शोभा सरसाता, सोम सुधा बरसाता।
सब हैं लगे कर्म में, कोई निष्क्रिय दृष्टि न आता।
है उद्देश्य नितांत तुच्छ तृण के भी लघु जीवन का।
उसी पूर्ति में वह करता है अंत कर्ममय तन का।

तुम मनुष्य हो, अमित बुद्धि-बल-बिलसित जन्म तुम्हारा।
क्या उद्देश्य-रहित हो जग में, तुमने कभी विचारा?
बुरा न मानो, एक बार सोचो तुम अपने मन में।
क्या कर्तव्य समाप्त कर लिया तुमने निज जीवन में?

जिस पर गिरकर उदर-दरी से तुमने जन्म लिया है।
जिसका खाकर अन्न, सुधा-सम नीर, समीर पिया है।
वह स्नेह की मूर्ति दयामयि माता तुल्य मही है।
उसके प्रति कर्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है?

केवल अपने लिए सोचते, मौज भरे गाते हो।
पीते, खाते, सोते, जगते, हँसते, सुख पाते हो।
जग से दूर स्वार्थ-साधन ही सतत तुम्हारा यश है।
सोचो, तुम्हीं, कौन अग-जग में तुम-सा स्वार्थ विवश है?

यह संसार मनुष्य के लिए एक परीक्षा-स्थल है।
दुःख है, प्रश्न कठोर देखकर होती बुद्धि विकल है।
किंतु स्वात्म बल-विज्ञ सत्पुरुष ठीक पहुँच अटकल से।
हल करते हैं प्रश्न सहज में अविरल मेधा-बल से।।

पैदा कर जिस देशजाति ने तुमको पाला-पोसा।
किए हुए है वह निज-हित का तुमसे बड़ा भरोसा।
उससे होना उऋण प्रथम है सत्कर्तव्य तुम्हारा।
फिर दे सकते हो वसुधा को शेष स्वजीवन सारा।।

– **रामनरेश त्रिपाठी**

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

(क) मौखिक

1. जड़ और चेतन में कवि ने क्या समान विशेषता पाई है?
2. सूर्य और चंद्रमा जग में किस प्रकार कर्मरत हैं?
3. कविता की किन पंक्तियों में बताया गया है कि विश्व के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा -करने से पहले हमें अपने देश के प्रति कर्तव्य को पूरा करना चाहिए।
4. प्रस्तुत कविता का मुख्य भाव क्या है?
   (क) मातृभूमि की वंदना
   (ख) देश और देशवासियों के प्रति हमारा कर्तव्य
   (ग) मनुष्य की स्वार्थपरता
   (घ) मनुष्य की विशिष्टता

(ख) लिखित

1. कवि ने मनुष्य का सबसे पहला कर्तव्य क्या बतलाया है और क्यों?
2. मनुष्य अन्य पदार्थों और जीवों से किस प्रकार भिन्न है? यह भिन्नता उसे किस ओर प्रेरित करती है?
3. मनुष्य को स्वार्थी क्यों बताया गया है?
4. संसार को परीक्षा-स्थल क्यों बताया गया है? इसमें कैसे उत्तीर्ण हुआ जा सकता है?
5. इस कविता के संदेश को अपने शब्दों में लिखिए।

योग्यता-विस्तार

1. निम्नलिखित पंक्तियों को पढ़िए और प्रस्तुत कविता के मुख्य भाव से उनकी तुलना कीजिए –

जिएँ तो सदा इसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।।

— *जयशंकर प्रसाद*

2. देश-भक्ति की कुछ कविताओं का संग्रह कीजिए और उन्हें कंठस्थ कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

सचर-अचर	-	चेतन और जड़
कर्म निरत	-	काम में लगे हुए
आतप	-	धूप
सोम	-	चंद्रमा
सुधा	-	अमृत
नितांत तुच्छ	-	अत्यंत निम्न श्रेणी का, न के बराबर
अमित	-	असीम
उदर-दरी से	-	गर्भ से
मही	-	पृथ्वी, धरती
सतत	-	निरंतर
अग-जग	-	जड़-चेतनयुक्त संसार
स्वात्म बल-विज्ञ	-	अपनी शक्ति पहचानने वाला
अविरल	-	निरंतर, लगातार
मेधा-बल	-	बुद्धि का बल

14. गणितज्ञ-ज्योतिषी आर्यभट

(प्रस्तुत पाठ में प्राचीन भारत के महान गणितज्ञ-ज्योतिषी आर्यभट का परिचय दिया गया है। निकोलस कोपर्निकस के बहुत पहले आर्यभट ने पृथ्वी के परिभ्रमण से संबंधित जानकारी दी थी। इनके द्‌वारा लिखा हुआ आर्यभटीय नामक अद्‌भुत ग्रंथ मात्र 242 पंक्तियों में ही गणित और ज्योतिष के विषयों पर विस्तृत प्रकाश डालता है।)

आज से करीब डेढ़ हज़ार साल पहले की बात है। उस ज़माने में आज के पटना शहर को पाटलिपुत्र कहते थे। वह बहुत बड़ा नगर था। उस नगर में बहुत से बाग-बगीचे थे, बड़ी तादात में फूल खिलते थे इसलिए इस नगर को कई लोग कुसुमपुर भी कहते थे।

पाटलिपुत्र नगर नंद, मौर्य और गुप्त सम्राटों की राजधानी था। दूर-दूर तक इस नगर की कीर्ति फैली हुई थी। राजधानी होने के कारण देशभर के प्रतिष्ठित पंडित यहाँ एकत्र होते थे। प्रख्यात नालंदा विश्वविद्‌यालय भी पटना से ज़्यादा दूर नहीं था। देश के ही नहीं, दूसरे देशों के विद्‌यार्थी भी विशेष अध्ययन के लिए नालंदा और पाटलिपुत्र पहुँचते थे। उस समय पाटलिपुत्र नगर ज्योतिष के अध्ययन के लिए मशहूर था।

इसी नगर की बात है। उस दिन सवेरे से ही नगर में काफी चहल-पहल थी। गंगा, सोन और गंडक नदियों के संगम की ओर लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी थी। बात ही ऐसी थी। उस दिन अपराह्‌न में सूर्य को

ग्रहण लगने वाला था, भरी दोपहरी में धरती पर अंधकार छा जाने वाला था। लोगों में यह प्रचारित था कि "राहु नाम का राक्षस सूर्य को निगल जाता है, तब ग्रहण लगता है। ग्रहण के समय उपवास रखना चाहिए, खूब दान-पुण्य करना चाहिए। तभी इस राक्षस के चंगुल से सूर्य-देवता को जल्दी-से-जल्दी मुक्ति मिलती है।"

सभी ओर आवाज़ें सुनाई दे रही थीं : "दे दान तो छुटे गिरान!" लोग डरे हुए थे। नगर के धनी-मानी लोग सवेरे से ही दान-दक्षिणा देने में जुटे हुए थे।

मगर पाटलिपुत्र नगर से थोड़ी दूर के आश्रम में कुछ दूसरा ही माहौल था। आश्रम एक टीले पर था। वहाँ भी बड़ी चहल-पहल थी। लेकिन वह चहल-पहल कुछ दूसरे प्रकार की थी। यह आश्रम भी कुछ अलग किस्म का था। टीले पर बसे उस आश्रम के लंबे-चौड़े आँगन में ताँबे, पीतल और लकड़ी के तरह-तरह के यंत्र रखे हुए थे। उनमें से कुछ यंत्र गोल थे, कुछ कटोरे-जैसे, कुछ वर्तुलाकार और कुछ शंकु की तरह के।



वस्तुत: वह एक वेधशाला थी। उस दिन यंत्रों के इर्द-गिर्द कई प्रसिद्ध ज्योतिषी और बहुत-से विद्यार्थी एकत्र हुए थे। वहाँ के ज्योतिषियों ने हिसाब लगाकर पहले से ही भविष्यवाणी की थी कि ठीक किस समय ग्रहण लगेगा, कहाँ-कहाँ दिखाई देगा और कितने समय तक रहेगा। आज उन्हें देखना था कि उनका हिसाब ठीक निकलता है या नहीं। इसलिए सभी उत्सुकता से ग्रहण के क्षण का इंतजार कर रहे थे। कुछ आचार्य और विद्यार्थी ग्रहण लगने के कारण पर चर्चा कर रहे थे। कुछ लोग पौराणिक आख्यान को प्रमाण मानकर कह रहे थे कि ग्रहण के समय राहु नाम का राक्षस सूर्य और चंद्र को निगल जाता है। हम इसे झूठ कैसे मान लें।

मगर वहाँ पर एक तरुण विद्यार्थी ऐसा भी था जो अपने साथियों को समझा रहा था, "पृथ्वी की बड़ी छाया जब चंद्र पर पड़ती है, तो चंद्र ग्रहण होता है। इसी प्रकार चंद्र जब पृथ्वी और सूर्य के बीच में आता है और वह सूर्य को ढक लेता है, तब सूर्य ग्रहण होता है। आज भी ऐसा ही होने वाला है। कोई राहु नाम का राक्षस सूर्य को निगल जाता है – यह कथन पुराण की कथा है।"

ग्रहणों की वैज्ञानिक व्याख्या करने वाले उस तरुण पंडित का नाम था – आर्यभट। कभी-कभी लोग उसे आर्यभट्ट के नाम से भी पुकारते थे। मगर उसका सही नाम आर्यभट ही था। 'भट' का मतलब है योद्धा। सचमुच आर्यभट अज्ञान के विरुद्ध ज्ञान का युद्ध जीवन भर लड़ते रहे।

आर्यभट दक्षिणापथ में गोदावरी तटक्षेत्र के अश्मक जनपद में पैदा हुए थे। इसलिए बाद में वे आश्मकाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। बचपन से ही वे तेज़ बुद्धि के थे। गणित एवं ज्योतिष के अध्ययन में उनकी गहरी रुचि थी। इन विषयों का गहन अध्ययन करने के लिए ही वे अपने अश्मक जनपद से इतनी दूर पाटलिपुत्र पहुँचे थे।

आर्यभट आँखें मूँदकर प्रचलित बातें मानने को तैयार नहीं थे और अपने विचार बेहिचक प्रस्तुत कर देते थे। ग्रहणों के बारे में ही नहीं, आकाश की दूसरी अनेक घटनाओं के बारे में भी उनके अपने स्वतंत्र विचार थे। उस ज़माने के प्राय: सभी लोग, ज्योतिषी भी, यही समझते थे कि हमारी पृथ्वी आकाश में स्थिर है और तारामंडल एवं सूर्य गतिशील।



आर्यभट की मूर्ति (बिरला प्लेनेटोरियम, कोलकाता के सौजन्य से)

मगर आर्यभट ने पृथ्वी की गति के बारे में अपने नए विचार खुलकर रखे। आर्यभट हमारे देश के पहले ज्योतिषी थे जिन्होंने साफ़ शब्दों में कहा कि पृथ्वी स्थिर नहीं है। यह अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है।

– तो फिर आकाश के तारे हमें चक्कर लगाते क्यों दिखाई देते हैं? पृथ्वी के चक्कर लगाने का पता हमें क्यों नहीं चलता?

आर्यभट का उत्तर था – "समझ लो कि नदी में एक नाव है और वह धारा के साथ तेज़ी से आगे बढ़ रही है। तब उसमें बैठा हुआ आदमी किनारे की स्थिर वस्तुओं को उलटी दिशा में जाता हुआ अनुभव करता है। उसी तरह आकाश के तारों की बात है। पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है और इसके साथ हम भी घूमते रहते हैं, इसलिए आकाश में स्थित तारामंडल हमें पूर्व से पश्चिम की ओर जाता जान पड़ता है। वस्तुत: तारामंडल स्थिर है और पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है।

आज यह सभी जानते हैं कि पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है। किंतु आर्यभट के ज़माने में यह एकदम नया विचार था। हमारे देश में आर्यभट के पहले किसी ने भी पृथ्वी के परिभ्रमण की बात नहीं कही थी। पुराने ग्रंथों में भी यही लिखा था कि पृथ्वी स्थिर है।

किसकी बात मानी जाए, ग्रंथों की या आर्यभट की? कोई भी ज्योतिषी इस मत को मानने के लिए तैयार नहीं होता था कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है। शायद कुछ ज्योतिषी आर्यभट के विचार से सहमत भी थे, मगर इसे खुलकर स्वीकार करने में उन्हें संकोच होता था। ग्रंथों की बातों का विरोध करने का साहस उनमें नहीं था।

यही कारण था कि आर्यभट का मत सही होने पर भी आगे की सदियों तक हमारे देश के बड़े-बड़े ज्योतिषी भी यही मानते रहे कि पृथ्वी स्थिर है। वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त जैसे महान ज्योतिषियों ने भी पृथ्वी के परिभ्रमण के सिद्धांत का मखौल उड़ाया। मज़े की बात तो यह है कि आर्यभट के शिष्य और उनके शिष्यों के शिष्य भी, अपने आचार्य के सही मत का खुलकर समर्थन नहीं कर पाते थे।

मगर आर्यभट पौराणिक मान्यताओं को आँख मूँदकर मान लेने वाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने अपने नए विचार खुलकर व्यक्त किए, निर्भय होकर। इतना ही नहीं, उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी जिसमें उन्होंने गणित और ज्योतिष से संबंधित अपने विचारों को प्रस्तुत किया। पुस्तक क्या है, गागर में सागर! अद्भुत बात तो यह है कि आर्यभट ने जब यह पुस्तक लिखी उस समय उनकी वय केवल तेईस वर्ष की थी।

आर्यभट की पुस्तक का नाम है – *आर्यभटीय* । पुस्तक पद्य में है। भाषा है संस्कृत। प्राचीन भारत में गणित और ज्योतिष का अध्ययन

साथ-साथ होता था, इसलिए इन दोनों विषयों का विवेचन प्रायः एक ही ग्रंथ में कर दिया जाता था। *आर्यभटीय* में भी गणित और ज्योतिष, दोनों की चर्चा है। पुस्तक के चार भाग हैं – *दशगीतिका*, *गणित*, *कालक्रिया* और *गोल*।

आर्यभटीय में कुल 121 श्लोक हैं। प्रत्येक श्लोक में दो पंक्तियाँ। इस तरह पूरे ग्रंथ में कुल मिलाकर 242 पंक्तियाँ हैं। आजकल इतनी पंक्तियों को दस पृष्ठों में छापा जा सकता है। बस, इतना ही बड़ा है आर्यभट का यह महान ग्रंथ। उस समय तक भारत में गणित और ज्योतिष से संबंधित जितनी महत्त्वपूर्ण बातें खोजी गई थीं उन सबको आर्यभट ने अत्यंत संक्षेप में अपनी पुस्तक में प्रस्तुत कर दिया है। पुराना ज्ञान ही नहीं, उन्होंने अपनी नई खोजी हुई बातें भी पुस्तक में रखी हैं।

आर्यभट से पहले हमारे देश में कई ज्योतिषी और गणितज्ञ हुए। उनसे पहले के गणित एवं ज्योतिष के कुछ ग्रंथ भी उपलब्ध हैं। परंतु आर्यभट से पहले के उन ग्रंथों को किसने लिखा, किस समय लिखा – इसके बारे में हमें कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। *आर्यभटीय* भारतीय गणित-ज्योतिष का पहला ग्रंथ है जिसमें इसके रचनाकार और रचनाकाल के बारे में स्पष्ट सूचना मिलती है।

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में संसार को प्राचीन भारत की सबसे बड़ी देन है – शून्य सहित केवल दस अंक संकेतों से ही संख्याओं को व्यक्त करना। इस दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति की खोज आर्यभट से तीन-चार सदियों पहले हो चुकी थी। आर्यभट इस नई अंक पद्धति से परिचित थे। उन्होंने अपने ग्रंथ के आरंभ में वृंद (1000000000) अर्थात

अरब तक ही दशगुणोत्तर संख्या-संज्ञाएँ देकर लिखा है कि इनमें प्रत्येक स्थान अपने पिछले स्थान से दस गुणा है।

प्राचीन भारत में गणित-ज्योतिष के ग्रंथ भी पद्य में लिखे जाते थे, इसलिए उनमें ख (0), पृथ्वी (1), नेत्र (2), ऋतु (6) जैसे शब्दों से संख्याओं को व्यक्त किया जाता था। इन शब्दांकों को उनके क्रम में लिखने का नियम था; जैसे – खचतुष्ट-रदअर्णव (चार शून्य-दाँत-सागर) का अर्थ होता था 4320000

आर्यभट अपने ग्रंथ को बहुत छोटा बनाना चाहते थे, वे अपने विचारों को कम-से-कम शब्दों में प्रस्तुत करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने एक नया उपाय खोजा। आर्यभट ने अक्षरों को संख्यामान प्रदान किए। जैसे : क् = 1, ख् = 2, ग् = 3 इत्यादि। अ, इ, उ आदि स्वरों को उन्होंने एक, सौ, दस हज़ार जैसे शतगुणोत्तर मान दिए। इस तरह उन्होंने व्यंजनों और स्वरों के मेलजोल से बड़ी-से-बड़ी संख्या को संक्षेप में लिखने का एक नया तरीका खोज निकाला। इस नई अक्षरांक पद्धति को अपनाकर आर्यभट बड़ी-बड़ी संख्याओं को छोटे-छोटे शब्दों में प्रस्तुत करने में समर्थ हुए, जैसे – उपर्युक्त संख्या 4320000 के लिए उनका शब्द है ख्युघृ। आर्यभट के ग्रंथ को समझने के लिए पहले उनकी इस अक्षरांक पद्धति को ठीक से समझना जरूरी है।

आर्यभट ने अपनी पुस्तक के *दशगीतिका* नामक पहले भाग में फार्मूलों की तरह गणित-ज्योतिष की कुछ बुनियादी बातें दी हैं। इसके दूसरे श्लोक में उन्होंने अपनी नई अक्षरांक पद्धति के नियमों को सूत्रबद्ध किया है। पुस्तक के *गणित* नामक दूसरे भाग में कुल 33 श्लोक हैं। इतने श्लोकों में ही आर्यभट ने वर्ग-वर्गमूल, धन-धनमूल, त्रैराशिक, श्रेणियाँ, क्षेत्रफलों,

धनफलों आदि से संबंधित नियम प्रस्तुत कर दिए हैं। *आर्यभटीय* में त्रिकोणमिति और समीकरणों का भी विवेचन है। इनमें गणित की कुछ ऐसी भी बातें हैं जिनकी खोज स्वयं आर्यभट ने की थी।

गणित् में वृत्त की परिधि और व्यास के अनुपात का बहुत महत्त्व है। आर्यभट के पहले इस अनुपात का मान 3 या $\sqrt{10}$ लिया जाता रहा। मगर आर्यभट ने इस अनुपात के लिए बेहतर मान दिया –

परिधि/व्यास = 62832/20000 = 3.1416

परिधि और व्यास के अनुपात को आज हम यूनानी अक्षर π (पाइ) से व्यक्त करते हैं और इसका कामचलाऊ मान $\frac{22}{7}$ या 3.1416 लेते हैं। 'पाइ' का ठीक-ठीक मान प्राप्त करना संभव नहीं है। आर्यभट इस बात को जानते थे। इसलिए जो मान उन्होंने दिया है उसे आसन्न मान (निकटतम) कहा है।

आर्यभटीय के *कालक्रिया* नामक तीसरे भाग में काल-विभाजन, युग-पद्धति आदि विषयों की चर्चा है। आर्यभट ने श्रुति-स्मृति ग्रंथों पर आधारित कृत्रिम युग-पद्धति को अस्वीकार करके एक नई सरल एवं वैज्ञानिक युग-पद्धति को जन्म दिया। उनके अनुसार –

1 कल्प = 14 मनु या 1008 युग

1 मनु = 72 युग

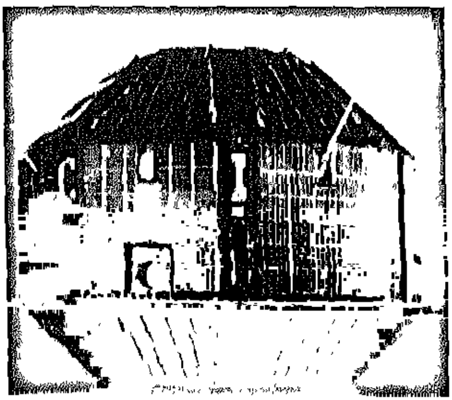
1 युग = 4320000 वर्ष

आर्यभटीय के *कालक्रिया* नामक तीसरे भाग में आर्यभट युग को चार समान भागों (युगपादों) में विभक्त करते हैं। वे युग के बारे में ब्रह्मा की आयु जैसी बात की कोई चर्चा नहीं करते हैं। वे कहते हैं कि काल

अनादि-अनंत है। सृष्टि और प्रलय की धारणा में उनकी कोई आस्था नहीं थी। स्मृतियों और पुराणों में पंच महाभूत का प्रतिपादन है। आर्यभट के अनुसार महाभूत केवल चार हैं – मिट्टी, जल, अग्नि और वायु। पाँचवें तत्त्व आकाश को उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

आर्यभटीय के *गोल* नामक चौथे भाग में गोल रचना से संबंधित गणित का विवेचन है। इसी में उन्होंने स्पष्ट किया है कि ग्रहण वस्तुत: क्यों घटित होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यभट स्वतंत्र विचारों वाले वैज्ञानिक थे, बुद्धिवादी थे। इसकी कीमत भी उन्हें चुकानी पड़ी। परंपरावादियों ने आर्यभट की पृथ्वी के परिभ्रमण संबंधी नई मान्यताओं की कटु आलोचना की और उन्हें हेय करार दिया। इतना ही नहीं, आर्यभट से सभी टीकाकारों ने लोक भय के कारण उनके ग्रंथ के भू: (पृथ्वी) शब्द को भं (तारागण) में बदल दिया। यह आर्यभट के पृथ्वी के परिभ्रमण सिद्धांत के मत को आकाश भ्रमण में बदलने का प्रयास था।



आर्यभट के साथ हमारे देश में गणित-ज्योतिष के अध्ययन की एक नई स्वस्थ परंपरा शुरू हुई थी। मगर बाद में हमारे देशवासियों ने आर्यभट और उनके *आर्यभटीय* ग्रंथ को लगभग भुला ही दिया था। *आर्यभटीय* ग्रंथ पिछले करीब एक हज़ार वर्षों से उत्तर भारत में उपलब्ध नहीं था। महाराष्ट्र के विद्वान

डॉ. भाऊ दाजी ने 1864 ई. में मलयालम लिपि में *आर्यभटीय* की ताड़पत्र पोथियाँ खोजीं और इनका विवरण प्रकाशित किया। उसके बाद ही विद्वज्जगत को आर्यभट का सही परिचय मिला। बहुत से लोगों को तो इस महान गणितज्ञ-ज्योतिषी के बारे में पहली बार उस समय जानने को मिला जब भारत के पहले कृत्रिम उपग्रह को आर्यभट नाम दिया गया और उसे 19 अप्रैल, 1975 को अंतरिक्ष में छोड़ा गया। आर्यभट-प्राचीन भारतीय विज्ञान का सबसे चमकीला सितारा।

– गुणाकर मुले

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. पटना शहर के प्राचीन नाम क्या-क्या थे?
2. प्राचीन काल में पाटलिपुत्र नगर की प्रसिद्धि के क्या कारण थे?
3. गंगा, सोन और गंडक नदियों के संगम पर लोग क्यों इकट्ठे हुए थे?
4. लोगों में सूर्यग्रहण के बारे में क्या धारणा थी?

(ख) लिखित

1. पाटलिपुत्र नगर से दूर टीले पर स्थित आश्रम की क्या विशेषता थी?
2. आश्रम की वेधशाला में ज्योतिषी और विद्यार्थी क्यों एकत्र हुए थे?
3. स्पष्ट कीजिए कि आर्यभट में अपने विचार खुलकर व्यक्त करने का साहस था?

4. आर्यभट ने सूर्य और चंद्र ग्रहण की क्या वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की?
5. आर्यभट ने किस दृष्टांत द्‌वारा यह स्पष्ट किया कि तारामंडल स्थिर है और पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है?
6. 'आर्यभटीय' पुस्तक के चारों भागों में वर्णित विषयवस्तु पर प्रकाश डालिए।
7. आर्यभट ने अपने विचारों को कम-से-कम शब्दों में व्यक्त करने के लिए क्या उपाय खोज निकाला?
8. प्राचीन भारत के गणित, ज्योतिष ग्रंथों में प्रयुक्त शब्दांक और आर्यभट की अक्षरांक पद्‌धति के अंतर को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों को बोलकर पढ़िए –
   विश्वविद्‌यालय, वर्तुलाकार, वैज्ञानिक, आश्मकाचार्य, पौराणिक, दशगीतिका, गणितज्ञ, ज्ञानार्जन, संख्यामान, अक्षरांक, त्रैराशिक, त्रिकोणमिति, समीकरण, विद्‌वज्जगत, पाटलिपुत्र
2. एक शब्द के अनेक संबद्‌ध शब्द उपसर्ग, प्रत्यय, समास आदि से बन सकते हैं। शब्दों के इस समूह को शब्द-परिवार कहते है; जैसे –
   दश = दशम, दशमांक, दशमलव, दशावतार, दशाब्दी
   दान = दानी, दानवीर, भूदान, दान-दक्षिणा
   निम्नलिखित शब्दों के शब्द-परिवार बनाइए –
   दिन, नगर, समय, ज्ञान, देश
3. पाठ में विभिन्न कारक आए हैं; जैसे – कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण
   नीचे दिए गए वाक्यों में रेखांकित शब्दों के कारकों के नाम बताइए –
   (क) नगर में बहुत से बाग-बगीचे थे।
   (ख) आर्यभट ने अपनी कई खोजें पुस्तक में लिखी हैं।
   (ग) आर्यभट ज्ञानार्जन के लिए कुसुमपुर पहुँचे थे।
   (घ) आर्यभट अपने विचारों को कम-से-कम शब्दों में प्रस्तुत करना चाहते थे।
   (ङ) गणित का उद्‌भव ज्योतिषशास्त्र से हुआ है।

4. मौखिक अथवा लिखित अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में पहले मन के विचार प्रायः छोटे-छोटे सरल वाक्य में बनते हैं, किंतु अभिव्यक्ति के स्तर पर ये वाक्य कभी सरल, कभी संयुक्त और कभी मिश्र बनकर प्रस्तुत होते हैं। इसे 'संश्लेषण' कहते हैं; जैसे –

सरल वाक्य (i) एक आश्रम था।
(ii) आश्रम टीले पर बसा था।
(iii) आश्रम का आँगन लंबा-चौड़ा था।
(iv) आँगन में तरह-तरह के यंत्र रखे थे।
(v) यंत्र ताँबे, पीतल और लकड़ी के थे।

संश्लेषण : टीले पर बसे आश्रम के लंबे-चौड़े आँगन में ताँबे, पीतल और लकड़ी के तरह-तरह के यंत्र रखे थे।

निम्नलिखित वाक्यों का संश्लेषण कीजिए –
(i) ग्रहण के समय उपवास रखो।
(ii) खूब दान-पुण्य करो।

योग्यता-विस्तार

जानकारी प्राप्त कीजिए कि अंतरिक्ष में उपग्रह क्यों भेजे जाते हैं तथा भारत 'आर्यभट' नामक उपग्रह के अतिरिक्त अब तक कितने और कौन-कौन से उपग्रह अंतरिक्ष में भेज चुका है?

शब्दार्थ और टिप्पणी

तादाद – संख्या
कीर्ति – यश
माहौल – वातावरण
वर्तुलाकार – गोलाकार
शंकु – भाले की नोंक जैसी आकृति
वेधशाला – ग्रह-नक्षत्रों के अध्ययन के लिए प्रयोगशाला
तरुण – नवयुवक
बेहिचक – निस्संकोच

मखौल	–	मज़ाक
गागर में सागर	–	थोड़े में बहुत कुछ कहना और लिखना
संख्या-संज्ञाएँ	–	संख्याओं के नाम
सूत्रबद्ध	–	सूत्र रूप में कहा हुआ, संकेत अक्षरों द्वारा व्यक्त किया हुआ
अनुपात	–	सापेक्षित संबंध, एक की तुलना में दूसरे का मान
श्रुति-स्मृति ग्रंथ	–	वेद और धर्मशास्त्र
अनादि-अनंत	–	जिसका आदि या अंत न हो
सृष्टि	–	जगत की उत्पत्ति
प्रलय	–	जगत का विनाश
आस्था	–	विश्वास, निष्ठा
आसन्न	–	निकट का, आसपास
पंच महाभूत	–	सृष्टि के निर्माण-कारक पाँच तत्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु
प्रतिपादन	–	स्थापना
हेय	–	निम्न, त्याज्य
ज्योतिष	–	ग्रह-नक्षत्रों की गति-स्थिति का अध्ययन करने वाले शास्त्र को प्राचीन भारत में ज्योतिष या गणित-ज्योतिष कहते थे। अब इस शास्त्र को हम खगोल विज्ञान कहते हैं। जो लोग ग्रह-नक्षत्रों के शुभाशुभ फल बताने का कार्य करते हैं उन्हें फलित-ज्योतिषी कहा जाता है।
नालंदा विश्वविद्यालय	-	बिहार प्रांत में स्थित नालंदा विश्वविद्यालय (विद्यापीठ) की स्थापना ईसा की पाँचवीं सदी में हुई थी और करीब 1300 ई. तक वह एशिया के एक महान विद्याकेंद्र के रूप में प्रसिद्ध रहा।
अश्मक	–	यह जनपद महाराष्ट्र में गोदावरी तट के पास था और इसकी राजधानी प्रतिष्ठान (पैठण) में थी।
वराहमिहिर	–	ईसा की पाँचवीं सदी के ज्योतिषी। पंचसिद्धांतिका, बृहत्संहिता, बृहज्जातक आदि इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

ब्रह्मगुप्त	–	ईसा की सातवीं सदी के गणितज्ञ-ज्योतिषी। इनके दो प्रसिद्ध ग्रंथ हैं – ब्रह्मस्फुट-सिद्धांत और खंडखाद्यक।
शक वर्ष	–	शक संवत् का आरंभ 78 ई. को माना जाता है। इसलिए शक वर्ष में 78 जोड़ने पर ईसवी सन का वर्ष प्राप्त होता है।
टीकाकार	–	मूल ग्रंथ में प्रस्तुत विषयों की विस्तृत व्याख्या करने वाले को टीकाकार कहते हैं।
दाशमिक स्थानमान अंक पद्धति	–	हमारी वर्तमान अंक पद्धति में शून्य सहित दस संकेत हैं और प्रत्येक संकेत का संख्या में उसके स्थान के अनुसार मान बदलता है, इसलिए इसे दाशमिक स्थानमान अंक-पद्धति कहते हैं।
भं	–	नक्षत्र, तारागण
दशगुणोत्तर	–	क्रमशः दस गुना अधिक
शतगुणोत्तर	–	क्रमशः सौ गुना अधिक
दक्षिणापथ	–	विंध्य पर्वत के दक्षिण में स्थित भू-भाग का प्राचीन नाम। विंध्य पर्वत के उत्तर में स्थित भू-भाग को उत्तरापथ कहते हैं।
ताड़पत्र	–	पुराने जमाने में हमारे देश में पुस्तकें खास तौर से तैयार किए गए ताड़ के पत्रों (ताड़पत्रों) या भूर्ज नामक पेड़ की छाल के पत्रों (भोजपत्रों) पर लिखी जाती थीं।
ख्युघृ	–	

खु	+	यु	+	घृ				
ख्	×	उ	=	2	×	10000	=	20000
य्	×	उ	=	30	×	10000	=	300000
घ्	×	ऋ	=	4	×	1000000	=	4000000
ख्युघृ							=	43,20,000

(आर्यभट ने 'क' से 'म' तक के वर्गीय अक्षरों को 1 से 25 तक के मान दिए। शेष वर्णों को उन्होंने अवर्गीय अक्षर कहा और उनके मान क्रमशः य = 30, र = 40, ल = 50, व = 60, श = 70, ष = 80, स = 90, और ह = 100 दिए।)

15. मित्रता

(प्रस्तुत निबंध एक विचार-प्रधान निबंध है। इसमें लेखक ने मित्रता से संबंधित विभिन्न पक्षों पर गहराई से विचार किया है। लेखक के अनुसार मित्रता मनुष्य-जीवन की आवश्यकता भी है और उसकी सहज प्रवृत्ति भी। सच्चा मित्र पथ-प्रदर्शक, भाई के समान प्रीतिकर, सहानुभूति रखने वाला, अच्छे और महान कार्यों के लिए प्रेरित करने वाला होता है। अतः मित्र के चुनाव में सतर्कता बहुत आवश्यक है, क्योंकि कुसंगति का दुष्प्रभाव मनुष्य को अवनति के गर्त में गिरा देता है।)

जब कोई युवा पुरुष अपने घर से बाहर निकलकर बाहरी संसार में अपनी स्थिति जमाता है, तब पहली कठिनता उसे मित्र चुनने में पड़ती है। यदि उसकी स्थिति बिलकुल एकांत और निराली नहीं रहती तो उसकी जान-पहचान के लोग धड़ाधड़ बढ़ते जाते हैं और थोड़े ही दिनों में कुछ लोगों से उसका हेल-मेल हो जाता है। यही हेल-मेल बढ़ते-बढ़ते मित्रता के रूप में परिणत हो जाता है। मित्रों के चुनाव की उपयुक्तता पर उसके जीवन की सफलता निर्भर हो जाती है, क्योंकि संगति का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बड़ा भारी पड़ता है। हम लोग ऐसे समय में समाज में प्रवेश करके अपना कार्य आरंभ करते हैं, जबकि हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है। हमारे भाव अपरिमार्जित और हमारी प्रवृत्ति अपरिपक्व रहती है। हम लोग कच्ची मिट्टी की मूर्ति के समान रहते हैं, जिसे जो जिस रूप में चाहे, उस रूप में ढाले—चाहे राक्षस बनाए, चाहे देवता।

ऐसे लोगों का साथ करना हमारे लिए बुरा है, जो हमसे अधिक दृढ़ संकल्प के हैं, क्योंकि हमें उनकी हर बात बिना विरोध के मान लेनी पड़ती है। पर ऐसे लोगों का साथ करना और भी बुरा है, जो हमारी ही बात को ऊपर रखते हैं, क्योंकि ऐसी दशा में न तो हमारे ऊपर कोई नियंत्रण रहता है और न हमारे लिए कोई सहारा रहता है। दोनों अवस्थाओं में जिस बात का भय रहता है, उसका पता युवकों को प्रायः बहुत कम रहता है। यदि विवेक से काम लिया जाए तो यह भय नहीं रहता, पर युवा पुरुष प्रायः विवेक से कम काम लेते हैं। कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग एक घोड़ा लेते हैं तो उसके सौ गुण-दोष को परख कर लेते हैं, पर किसी को मित्र बनाने में उसके पूर्व आचरण और स्वभाव आदि का कुछ भी विचार और अनुसंधान नहीं करते। वे उसमें सब बातें अच्छी-ही-अच्छी मानकर अपना पूरा विश्वास जमा देते हैं। हँसमुख चेहरा, बातचीत का ढंग, थोड़ी चतुराई या साहस – ये ही दो-चार बात किसी में देखकर लोग चटपट उसे अपना बना लेते हैं। हम लोग यह नहीं सोचते कि मैत्री का उद्देश्य क्या है, क्या जीवन के व्यवहार में उसका कुछ मूल्य भी है। यह बात हमें नहीं सूझती कि यह ऐसा साधन है, जिससे आत्मशिक्षा का कार्य बहुत सुगम हो जाता है। एक प्राचीन विद्वान का वचन है, "विश्वासपात्र मित्र से बड़ी भारी रक्षा रहती है। जिसे ऐसा मित्र मिल जाए उसे समझना चाहिए कि खज़ाना मिल गया।" विश्वासपात्र मित्र जीवन की एक औषध है। हमें अपने मित्रों से यह आशा रखनी चाहिए कि वे उत्तम संकल्पों से हमें दृढ़ करेंगे, दोषों और त्रुटियों से हमें बचाएँगे, हमारे सत्य, पवित्रता और मर्यादा के प्रेम को पुष्ट करेंगे, जब हम कुमार्ग पर पैर रखेंगे, तब वे हमें सचेत करेंगे, जब हम हतोत्साहित होंगे, तब हमें उत्साहित करेंगे। सारांश यह है

कि हमें उत्तमतापूर्वक जीवन-निर्वाह करने में हर तरह से सहायता देंगे। सच्ची मित्रता में उत्तम वैद्य की-सी निपुणता और परख होती है, अच्छी-से-अच्छी माता का-सा धैर्य और कोमलता होती है। ऐसी ही मित्रता करने का प्रयत्न प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए।

छात्रावस्था में मित्रता की धुन सवार रहती है। मित्रता हृदय से उमड़ी पड़ती है। पीछे के जो स्नेह-बंधन होते हैं, उनमें न तो उतनी उमंग रहती है, न उतनी खिन्नता। बाल-मैत्री में जो मग्न करनेवाला आनंद होता है, वह और कहाँ? कैसी मधुरता और कैसी अनुरक्ति होती है, कैसा अपार विश्वास होता है! हृदय से कैसे-कैसे उद्गार निकलते हैं! वर्तमान कैसा आनंदमय दिखाई पड़ता है और भविष्य के संबंध में कैसी लुभानेवाली कल्पनाएँ मन में रहती हैं। कितनी बातें लगती हैं और कितनी जल्दी मानना होता है।

'सहपाठी की मित्रता' इस उक्ति में हृदय के कितने भारी उथल-पुथल का भाव भरा हुआ है। किंतु जिस प्रकार युवा पुरुष की मित्रता स्कूल के बालक की मित्रता से दृढ़, शांत और गंभीर होती है, उसी प्रकार हमारी युवावस्था के मित्र बाल्यावस्था के मित्रों से कई बातों में भिन्न होते हैं। मैं समझता हूँ कि मित्र चाहते हुए बहुत-से लोग मित्र के आदर्श की कल्पना मन में करते होंगे। पर इस कल्पित आदर्श से तो हमारा काम जीवन की झंझटों में चलता नहीं। सुंदर प्रतिभा, मनभावनी चाल और स्वच्छंद प्रकृति, ये ही दो-चार बातें देखकर मित्रता की जाती है, पर जीवन-संग्राम में साथ देनेवाले मित्रों में इनसे कुछ अधिक बातें चाहिए। मित्र केवल उसे नहीं कहते, जिसके गुणों की तो हम प्रशंसा करें, पर जिससे हम स्नेह न कर सकें, जिससे अपने छोटे-छोटे काम ही हम निकालते जाएँ, पर भीतर-ही-भीतर

घृणा करते रहें। मित्र सच्चे पथ-प्रदर्शक के समान होना चाहिए, जिस पर हम पूरा विश्वास कर सकें। मित्र भाई के समान होना चाहिए, जिसे हम अपना प्रीति-पात्र बना सकें। हमारे और हमारे मित्र के बीच सच्ची सहानुभूति होनी चाहिए। ऐसी सहानुभूति जिससे एक के हानि-लाभ को दूसरा अपना हानि-लाभ समझे।

मित्र का कर्तव्य इस प्रकार बताया गया है, "उच्च और महान कार्यों में इस प्रकार सहायता देना, मन बढ़ाना और साहस दिलाना कि तुम अपनी-अपनी सामर्थ्य से बाहर काम कर जाओ।" यह कर्तव्य उसी से पूरा होगा, जो दृढ़ चित्त और सत्य-संकल्प का हो। इससे हमें ऐसे ही मित्रों की खोज में रहना चाहिए जिनमें हमसे अधिक आत्मबल हो। हमें उनका पल्ला उसी तरह पकड़ना चाहिए, जिस तरह सुग्रीव ने राम का पल्ला पकड़ा था। मित्र हों तो प्रतिष्ठित और शुद्ध हृदय के हों, मृदुल और पुरुषार्थी हों, शिष्ट और सत्यनिष्ठ हों, जिससे हम अपने को उनके भरोसे पर छोड़ सकें और यह विश्वास कर सकें कि उनसे किसी प्रकार का धोखा न होगा।

जो बात ऊपर मित्रों के संबंध में कही गई है, वही जान-पहचानवालों के संबंध में भी ठीक है। जो हमारे जीवन को उत्तम और आनंदमय बनाने में कुछ सहायता दे सकते हों, यद्यपि उतनी नहीं जितनी गहरे मित्र दे सकते हैं। मनुष्य का जीवन थोड़ा है, उसमें खोने के लिए समय नहीं। यदि क, ख और ग हमारे लिए कुछ नहीं कर सकते हैं, न कोई बुद्धिमानी या विनोद की बातचीत कर सकते हैं, न कोई अच्छी बात बतला सकते हैं, न सहानुभूति द्वारा हमें ढाढ़स बँधा सकते हैं, न हमारे आनंद में सम्मिलित हो सकते हैं, न हमें कर्तव्य का ध्यान दिला सकते हैं, तो ईश्वर हमें उनसे दूर ही रखे।

आजकल जान-पहचान बढ़ाना कोई बड़ी बात नहीं है। कोई भी युवा पुरुष ऐसे अनेक युवा पुरुषों को पा सकता है, जो उसके साथ थियेटर देखने जाएँगे, नाचरंग में जाएँगे, सैर-सपाटे में जाएँगे, भोजन का निमंत्रण स्वीकार करेंगे। यदि ऐसे जान-पहचान के लोगों से कुछ हानि न होगी, तो लाभ भी न होगा। पर यदि हानि होगी तो बड़ी भारी होगी।

कुसंग का ज्वर सबसे भयानक होता है। यह केवल नीति और सद्‌वृत्ति का ही नाश नहीं करता, बल्कि बुद्‌धि का भी क्षय करता है। किसी युवा पुरुष की संगति यदि बुरी होगी तो वह उसके पैरों में बँधी चक्की के समान होगी, जो उसे दिन-रात अवनति के गड्ढे में गिराती जाएगी और यदि अच्छी होगी तो सहारा देने वाली बाहु के समान होगी, जो उसे निरंतर उन्नति की ओर उठाती जाएगी।

इंग्लैंड के एक विद्‌वान को युवावस्था में राज-दरबारियों में जगह नहीं मिली। इस पर ज़िंदगी भर वह अपने भाग्य को सराहता रहा। बहुत-से लोग तो इसे अपना बड़ा भारी दुर्भाग्य समझते, पर वह अच्छी तरह जानता था कि वहाँ वह बुरे लोगों की संगति में पड़ता जो उसकी आध्यात्मिक उन्नति में बाधक होते। बहुत-से लोग ऐसे होते हैं, जिनके घड़ी भर के साथ से भी बुद्‌धि भ्रष्ट हो जाती है, क्योंकि उनके ही बीच में ऐसी-ऐसी बातें कही जाती हैं जो कानों में न पड़नी चाहिए, चित्त पर ऐसे प्रभाव पड़ते हैं, जिनसे उसकी पवित्रता का नाश होता है। बुराई अटल भाव धारण करके बैठती है। बुरी बातें हमारी धारणा में बहुत दिनों तक टिकती हैं। इस बात को प्राय: सभी लोग जानते हैं कि भद्दे व फूहड़ गीत जितनी जल्दी ध्यान पर चढ़ते हैं, उतनी जल्दी कोई गंभीर या अच्छी बात नहीं। एक बार एक मित्र ने मुझसे कहा कि उसने लड़कपन में कहीं से बुरी कहावत सुनी थी,

जिसका ध्यान वह लाख चेष्टा करता है कि न आए, पर बार-बार आता है। जिन भावनाओं को हम दूर रखना चाहते हैं, जिन बातों को हम याद करना नहीं चाहते, वे बार-बार हृदय में उठती हैं और बेधती हैं। अतः तुम पूरी चौकसी रखो, ऐसे लोगों को साथी न बनाओ जो अश्लील, अपवित्र और फूहड़ बातों से तुम्हें हँसाना चाहें। सावधान रहो। ऐसा न हो कि पहले-पहल तुम इसे एक बहुत सामान्य बात समझो और सोचो कि एक बार ऐसा हुआ, फिर ऐसा न होगा। अथवा तुम्हारे चरित्रबल का ऐसा प्रभाव पड़ेगा कि ऐसी बातें बकने वाले आगे चलकर आप सुधर जाएँगे। नहीं, ऐसा नहीं होगा। जब एक बार मनुष्य अपना पैर कीचड़ में डाल देता है, तब फिर यह नहीं देखता कि वह कहाँ और कैसी जगह पैर रखता है। धीरे-धीरे उन बुरी बातों में अभ्यस्त होते-होते तुम्हारी घृणा कम हो जाएगी। पीछे तुम्हें उनसे चिढ़ न मालूम होगी, क्योंकि तुम यह सोचने लगोगे कि चिढ़ने की बात ही क्या है। तुम्हारा विवेक कुंठित हो जाएगा और तुम्हें भले-बुरे की पहचान न रह जाएगी। अंत में होते-होते तुम भी बुराई के भक्त बन जाओगे। अतः हृदय को उज्ज्वल और निष्कलंक रखने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि बुरी संगति की छूत से बचो। एक पुरानी कहावत है :

"काजल की कोठरी में कैसो ही सयानो जाय।
एक लीक काजल की लागि है पै लागि है।"

– **रामचंद्र शुक्ल**

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. बाहरी संसार में उतरने पर नौजवानों के समक्ष पहली कठिनाई क्या आती है?
2. आजकल कैसे लोगों के साथ सरलता से जान-पहचान हो जाती है?
3. हम से अधिक दृढ़ संकल्प वाले लोगों का साथ हमारे लिए क्यों बुरा हो सकता है?
4. छात्रावस्था और उसके बाद की मित्रता में क्या अंतर होता है?
5. अपने से अधिक आत्मबल रखने वाले व्यक्ति को मित्र बनाने से क्या लाभ है?
6. राजदरबार में जगह न मिलने पर इंग्लैंड का एक विद्वान अपने भाग्य को क्यों सराहता रहा?

(ख) लिखित

1. "सच्ची मित्रता में उत्तम वैद्य की-सी निपुणता और परख होती है, अच्छी-से-अच्छी माता का-सा धैर्य और कोमलता होती है" – स्पष्ट कीजिए।
2. मित्र का चुनाव करते समय हमें किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
3. मित्रता से आत्मशिक्षा का कार्य कैसे सुगम हो जाता है? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
4. जीवन की अलग-अलग अवस्थाओं की मित्रता के लक्षण बताइए।
5. भिन्न प्रकृति और स्वभाव के लोगों में मित्रता बनी रहती है। कैसे? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
6. हमारा विवेक कुंठित न हो, इसके लिए हमें क्या-क्या प्रयास करने चाहिए?

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित वाक्यांशों के लिए एक-एक शब्द बताइए; जैसे : जिसका सत्य में दृढ़ विश्वास हो – सत्यनिष्ठ
   (क) जो नीति का ज्ञाता हो।
   (ख) जिस पर विश्वास किया जा सके।
   (ग) जो पका हुआ न हो।

(घ) जो मन को अच्छा लगता हो।

(ङ) जिसके चित्त में दृढ़ता हो।

(च) जिसका उत्साह नष्ट हो गया हो।

2. निम्नलिखित शब्दों में संधि कीजिए और उसका नाम भी बताइए –
नि:+कलंक, सम्+कल्प, सत्+वृत्ति, हत+उत्साहित, प्रति+एक, सह+अनुभूति, पुरुष+अर्थी

3. दो या दो से अधिक पद (शब्द) मिलकर जब एक पद बनते हैं, उन्हें समस्त-पद कहते हैं। समस्त-पद का पहला पद यदि अव्यय हो तथा संपूर्ण पद भी क्रियाविशेषण या अव्यय बन जाए, तो वहाँ अव्ययीभाव समास होता है; जैसे : प्रत्येक = प्रति+एक (हरेक)

नीचे लिखे समस्त पदों का विग्रह करते हुए समास का नाम बताइए –
आकंठ, जीवन-संग्राम, हानि-लाभ, धड़ाधड़, जान-पहचान, प्रतिदिन, यथाशक्ति, स्नेह-बंधन, दिन-रात, बाल-मैत्री, प्रीति-पात्र

पाठ में **अच्छी ही अच्छी** और **अच्छी से अच्छी** रूपों का प्रयोग हुआ है। **अच्छी ही अच्छी** के पुनरुक्त रूप में **ही** निपात लगने से अच्छी की समग्रता का बोध होता है। **अच्छी से अच्छी** में **से** परसर्ग लगाने से तुलना का बोध होता है अर्थात् जिसका अभिप्राय है, जो सबसे अच्छी हो। इस प्रकार के प्रयोगों से छात्रों को परिचित कराते हुए निम्नलिखित रूपों से वाक्य बनवाइए –

अधिक ही अधिक	अधिक से अधिक
बड़े ही बड़े	बड़े से बड़े

योग्यता-विस्तार

1. कुमित्र और सुमित्र संबंधी कुछ दोहों और सूक्तियों का संकलन कीजिए।

2. (क) जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग।।

(ख) संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति के धंध।
राखो मेलि कपूर में, हींग न होई सुगंध।।

उपर्युक्त दोनों दोहों से यह स्वर व्यंजित होता है कि सज्जनों पर कुसंगति का और दुर्जनों पर सुसंगति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। क्या आप इससे सहमत हैं? कक्षा पर इस संबंध में एक परिचर्चा का आयोजन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

परिणत होना	–	बदल जाना, रूपांतरित होना
उपयुक्तता	–	अनुकूलता, औचित्य, ठीक होना
संस्कार	–	परिष्कार, शुद्धि
अपरिमार्जित	–	जो साफ़-सुथरा न हो, अस्वच्छ
अपरिपक्व	–	जो पका न हो, अविकसित
नियंत्रण	–	प्रतिबंध, रोक
अनुसंधान	–	खोज
विवेक	–	भले-बुरे की पहचान करने की शक्ति, ज्ञान
हतोत्साहित	–	जिसमें उत्साह न रहा हो
खिन्नता	–	दुख
अनुरक्ति	–	अनुराग, प्रेम
स्वच्छंद प्रकृति	–	उन्मुक्त स्वभाव, मनमाना काम करने का स्वभाव
जीवन संग्राम	–	जीवन रूपी युद्ध
पथ-प्रदर्शक	–	राह दिखाने वाला
सामर्थ्य	–	क्षमता, शक्ति
सत्य संकल्प	–	दृढ़ निश्चय
पल्ला पकड़ना	–	सहारा लेना
विनोद	–	हँसी -मज़ाक
ढाढ़स बँधाना	–	हिम्मत बढ़ाना
आध्यात्मिक	–	आत्मा की उन्नति से संबंधित
अश्लील	–	फूहड़, भद्दा, बेढंगा
कुंठित	–	निष्प्रभावी, कुंद होना, मंद
विषय-वासना	–	भोग विलास, ऐंद्रिक सुखभोग
सद्वृत्ति	–	सदाचार, अच्छाई की ओर जाने की प्रवृत्ति
निष्कलंक	–	बेदाग, निर्दोष, साफ़-सुथरा

16. नदी का रास्ता

(प्रस्तुत कविता में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है कि जीवन में आगे बढ़ने के लिए व्यक्ति की इच्छाशक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है अथवा परिस्थितियाँ। समुद्र से मिलने तक की यात्रा में नदी के भीतरी वेग की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण है अथवा ऊँची-नीची भूमि भी। इस संबंध में नदी और भूमि के अपने-अपने दावे हैं। 'किधर है सत्य' प्रश्न का उत्तर कवि पाठकों के विचार के लिए खुला छोड़ देता है।)



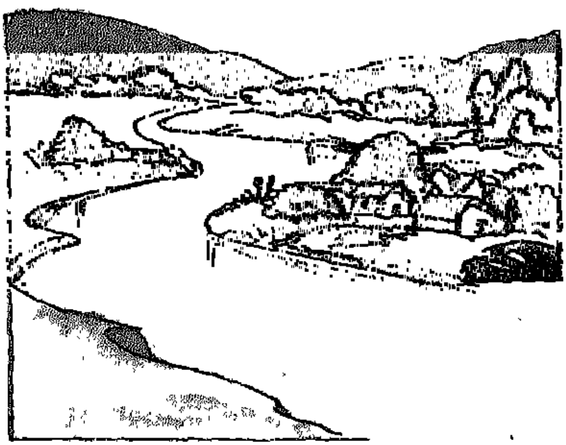
नदी को रास्ता किसने दिखाया,
सिखाया था उसे किसने
कि अपनी भावना के वेग को
उन्मुक्त बहने दे,
कि वह अपने लिए
खुद खोज लेगी
सिंधु की गंभीरता
स्वच्छंद बहकर?

इसे हम पूछते आए युगों से,
और सुनते भी युगों से आ रहे उत्तर नदी का –
मुझे कोई कभी आया नहीं था राह दिखलाने,
बनाया मार्ग मैंने आप ही अपना।



ढकेला था शिलाओं को,
गिरी निर्भीकता से मैं कई ऊँचे प्रपातों से,
वनों से कंदराओं में
भटकती-भूलती मैं
फूलती उत्साह से प्रत्येक बाधा-विघ्न को
ठोकर लगाकर-ठेलकर,
बढ़ती गई आगे निरंतर
एक तट को दूसरे से दूरतर करती।

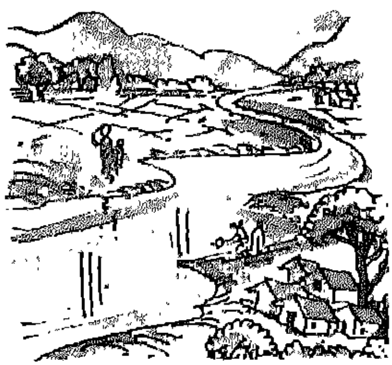
बढ़ी संपन्नता के साथ
और अपने दूर तक फैले हुए
साम्राज्य के अनुरूप
गति को मंद कर -
पहुँची जहाँ सागर खड़ा था
फेन की माला लिए
मेरी प्रतीक्षा में,
यही इतिवृत्त मेरा।





मार्ग मैंने आप ही अपना बनाया था
मगर भूमि का दावा
कि उसने ही बताया था नदी को मार्ग,
उसने ही चलाया था नदी को फिर
जहाँ-जैसे-जिधर चाहा,
शिलाएँ सामने कर दीं
जहाँ वह चाहती थी
रास्ते बदले नदी,
ज़रा बाएँ मुड़े
या दाहिने होकर निकल जाए,
स्वयं नीची हुई
गति में नदी के
वेग लाने के लिए
वहीं समतल
जहाँ चाहा कि उसकी चाल धीमी हो।

बताती राह,
गति को तीव्र अथवा मंद करती
जंगलों में और नगरों में चलाती
ले गई भोली नदी को भूमि सागर तक।
किधर है सत्य?



मन के वेग ने
परिवेश को अपनी सबलता से झुकाकर
रास्ता अपना निकाला था
कि मन के वेग को
बहना पड़ा बेबस,
जिधर परिवेश ने झुककर
स्वयं ही राह दे दी थी –
किधर है सत्य?

– बालकृष्ण राव

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

(क) मौखिक

1. नदी के विषय में हम कौन-सा प्रश्न पूछते आए हैं?
2. नदी को रास्ता दिखाने के बारे में धरती का क्या दावा है?
3. आशय बताइए –
   एक तट को दूसरे से दूरतर करती।

(ख) लिखित

1. नदी की प्रतीक्षा में कौन खड़ा रहता है? नदी उसके निकट पहुँचते समय अपनी गति को धीमा क्यों कर देती है?
2. धरती के अनुसार वह नदी की चाल को धीमा या तेज़ करने के लिए क्या करती है?

3. नदी ने अपनी निर्भीकता को कैसे प्रमाणित किया है?
4. 'ले गई भोली नदी को भूमि सागर तक'
   उपर्युक्त पंक्ति में नदी को 'भोली' क्यों कहा गया है?
5. मनुष्य जीवन की तुलना यदि नदी से की जाए तो उसे आगे बढ़ने के लिए क्या करना होगा?
6. मनुष्य के निर्माण में उसके परिवेश का अधिक हाथ होता है या उसकी इच्छा शक्ति का? विस्तार से उत्तर दीजिए।

योग्यता-विस्तार

'मार्ग मैंने आप ही अपना बनाया था' – इसका भाव पल्लवन कीजिए।

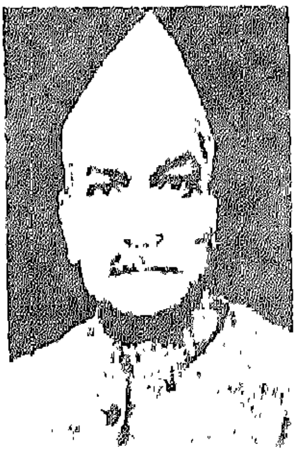
शब्दार्थ और टिप्पणी

उन्मुक्त	–	खुला, बंधनरहित
स्वच्छंद	–	अपने मनमाने ढंग से
प्रपात	–	झरना
कंदरा	–	गुफ़ा
संपन्नता	–	भरा-पूरा होना, समृद्धि
अनुरूप	–	समान, सदृश्य
इतिवृत्त	–	वृत्तांत, विवरण
परिवेश	–	वातावरण

17. राजेंद्र बाबू

('राजेंद्र बाबू' श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा लिखित एक जीवंत संस्मरण है। इस संस्मरण में लेखिका ने राजेंद्र बाबू के व्यक्तित्व की विशेषताओं को रेखांकित किया है। उनके शरीर की आकर्षक बनावट, वेशभूषा की सादगी, उनका देहातीपन और अस्त-व्यस्तता से लेकर उनकी प्रतिभा और बुद्धि की विशिष्टता, उनके स्वभाव की कोमलता और कठोरता तथा उनकी गंभीर संवेदना का चित्रण लेखिका ने बड़ी भावुकता और मार्मिकता के साथ किया है। यथाप्रसंग राजेंद्र बाबू की पत्नी के स्वभाव की विशेषताओं के उल्लेख से यह संस्मरण और भी आत्मीय हो गया है। इस संस्मरण में राजेंद्र बाबू के निजी सचिव श्री चक्रधर की सादगी और निष्ठा का भी बड़ा मार्मिक वर्णन है।)

राजेंद्र बाबू को मैंने पहले-पहल एक सर्वथा गद्यात्मक वातावरण में ही देखा था, परंतु उस गद्य ने कितने भावात्मक क्षणों की अटूट माला गूँथी है, यहाँ बताना कठिन है।



मैं प्रयाग में बी.ए. की विद्यार्थी थी और शीतावकाश में अपने घर भागलपुर जा रही थी। पटना में भाई से मिलने की बात थी, अतः स्टेशन पर ही प्रतीक्षा के कुछ घंटे व्यतीत करने पड़े।

स्टेशन के एक ओर तीन पैर वाली बेंच पर देहातियों की वेशभूषा में परंतु कुछ नागरिक

जनों से घिरे सज्जन जो विराजमान थे, उनकी ओर मेरी विहंगम दृष्टि जाकर लौट आई। वास्तव में भाई से यह जानने के उपरांत कि उक्त सज्जन ही राजेंद्र बाबू हैं, मुझे अभिवादन का ध्यान आया।

पहली दृष्टि में ही जो आकृति स्मृति में अंकित हो गई थी, उसमें इतने वर्षों ने न कोई नई रेखा जोड़ी है और न कोई नया रंग भरा है।

सत्य में से जैसे कुछ घटाना या जोड़ना संभव नहीं रहता, वैसे ही सच्चे व्यक्तित्व में भी कुछ जोड़ना-घटाना संभव नहीं है।

काले घने पर छोटे कटे हुए बाल, चौड़ा मुख, चौड़ा माथा, घनी भृकुटियों के नीचे बड़ी आँखें, मुख के अनुपात में कुछ भारी नाक, कुछ गोलाई लिए चौड़ी ठुड्डी, कुछ मोटे पर सुडौल होंठ, श्यामल झाँई देता हुआ गेहुआँ वर्ण, ग्रामीणों जैसी बड़ी-बड़ी मूँछें जो ऊपर के होंठ पर ही नहीं नीचे के होंठ पर भी रोमिल आवरण डाले हुए थीं। हाथ, पैर, शरीर सबमें लंबाई की ऐसी विशेषता थी, जो दृष्टि को अनायास आकर्षित कर लेती थी।

उनकी वेशभूषा की ग्रामीणता तो दृष्टि को और भी उलझा लेती थी। खादी की मोटी धोती ऐसा फेंटा देकर बाँधी गई थी कि एक ओर दाहिने पैर पर घुटना छूती थी और दूसरी ओर बाएँ पैर की पिंडली। मोटे, खुरदरे, काले बंद गले के कोट में ऊपर का भाग बटन टूट जाने के कारण खुला था और घुटने के नीचे का बटनों से बंद था, सरदी के कारण पैरों में मोजे-जूते तो थे, परंतु कोट और धोती के समान उनमें भी विचित्र स्वच्छंदतावाद था। एक मोज़ा जूते पर उतर आया था और दूसरा टखने पर घेरा बना रहा था। मिट्टी की पर्त से न जूतों के रंग का पता चलता था,

न रूप का। गांधी टोपी की स्थिति तो और भी विचित्र थी। उसकी आगे की नोक बाईं भौंह पर खिसक आई थी और टोपी की कोर माथे पर पट्टी की तरह लिपटी हुई थी। देखकर लगता था मानो वे किसी हड़बड़ी में चलते-चलते कपड़े पहनते आए हैं, अतः जो जहाँ स्थिति में अटक गया, वह वहीं उसी स्थिति में अटका रह गया।

उनकी मुखाकृति देखकर अनुभव होता था मानो इन्हें पहले कहीं देखा है। अनेक व्यक्तियों ने उन्हें प्रथम बार देखकर भी ऐसा ही अनुभव किया होगा। बहुत सोचने के उपरांत उस प्रकार की अनुभूति का कारण समझ में आ सका।

राजेंद्र बाबू की मुखाकृति ही नहीं, उनके शरीर के संपूर्ण गठन में एक सामान्य भारतीय जन की आकृति और गठन की छाया थी, अतः उन्हें देखनेवाले को कोई-न-कोई आकृति या व्यक्ति स्मरण हो आता था और वह अनुभव करने लगता था कि इस प्रकार के व्यक्ति को पहले भी कहीं देखा है। आकृति तथा वेशभूषा के समान ही वे अपने स्वभाव और रहन-सहन में सामान्य भारतीय या भारतीय कृषक का ही प्रतिनिधित्व करते थे। प्रतिभा और बुद्धि की विशिष्टता के साथ-साथ उन्हें जो गंभीर संवेदना प्राप्त हुई थी, वही उनकी सामान्यता को गरिमा प्रदान करती थी।

भाई जवाहरलाल जी की अस्त-व्यस्तता भी व्यवस्था से निर्मित होती थी, किंतु राजेंद्र बाबू की सारी व्यवस्था ही अस्त-व्यस्तता का पर्याय थी। दूसरे यदि जवाहरलाल जी की अस्त-व्यस्तता देख लें तो उन्हें बुरा नहीं लगता था, परंतु अपनी अस्त-व्यस्तता के प्रकट होने पर राजेंद्र बाबू भूल करनेवाले बालक के समान संकुचित हो जाते थे। एक दिन यदि दोनों पैरों

में दो भिन्न रंग के मोज़े पहने किसी ने उन्हें देख लिया तो उनका संकुचित हो उठना अनिवार्य था। परंतु दूसरे दिन जब वे स्वयं सावधानी से रंग का मिलान करके पहनते तो पहले से भी अधिक अनमिल रंगों के पहन लेते।

उनकी वेशभूषा की अस्त-व्यस्तता के साथ उनके निजी सचिव और सहचर भाई चक्रधर जी का स्मरण अनायास हो आता है। जब मोज़ों में से पाँचों उँगलियाँ बाहर निकलने लगतीं, जब जूते के तले पैर के तलवों के गवाक्ष बनने लगते, जब धोती, कुरते, कोट आदि का खद्दर अपने मूल ताने-बाने में बदलने लगता, तब चक्रधर इस पुरातन सज्जा को अपने लिए सहेज लेते। उन्होंने वर्षों तक इसी प्रकार राजेंद्र बाबू के पुराने परिधान से अपने आपको प्रसाधित कर कृतार्थता का अनुभव किया था। मैंने ऐसे गुरु-शिष्य या स्वामी-सेवक फिर अब तक नहीं देखे।

राजेंद्र बाबू के निकट संपर्क में आने का अवसर मुझे सन् 1937 में मिला जब वे कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में महिला विद्यापीठ महाविद्यालय के भवन का शिलान्यास करने प्रयाग आए। उनसे ज्ञात हुआ कि उनकी 15-16 पौत्रियाँ हैं, जिनकी पढ़ाई की व्यवस्था नहीं हो पाई है। मैं यदि अपने छात्रावास में रखकर उन्हें विद्यापीठ की परीक्षाओं में बैठा सकूँ तो उन्हें शीघ्र कुछ विद्या प्राप्त हो सकेगी।

पहले बड़ी, फिर छोटी, फिर उनसे छोटी के क्रम से बालिकाएँ मेरे संरक्षण में आ गईं और उन्हें देखने प्रायः उनकी दादी और कभी-कभी दादा भी प्रयाग आते रहे। तभी राजेंद्र बाबू की सहधर्मिणी के निकट संपर्क में आने का अवसर मिला। वे सच्चे अर्थ में धरती की पुत्री थीं – साध्वी, सरल, क्षमामयी, सबके प्रति ममतालु और असंख्य संबंधों की सूत्रधारिणी। ससुराल में उन्होंने बालिका-वधू रूप में पदार्पण किया था। संभ्रांत जमींदार

परिवार की परंपरा के अनुसार उन्हें घंटों सिर नीचा करके एकासन बैठना पड़ता था, परिणामत: उनकी रीढ़ की हड्डी इस प्रकार झुक गई कि युवती होकर भी वे सीधी खड़ी नहीं हो पाईं।

राजेंद्र बाबू ने मुझे बताया कि बालिकाओं की दादी किसी का छुआ नहीं खातीं, केवल ब्राह्मण रसोइया अपवाद है। छात्रावास का रसोइया महाराज उनकी थाली परोस देगा। कुछ अन्यथा न मानना, कहकर वे संकुचित-से हो गए।

बिहार के ज़मींदार परिवार की वधू और स्वातंत्र्य युद्ध के अपराजेय सेनानी की पत्नी होने का न उन्हें कभी अहंकार हुआ और न उनमें कोई मानसिक ग्रंथि ही बनी। छात्रावास की सभी बालिकाओं तथा नौकर-चाकरों का उन्हें समान रूप से ध्यान रहता था। एक दिन या कुछ घंटों ठहरने पर भी वे सबको बुला-बुलाकर उनका तथा उनके परिवार का कुशल-मंगल पूछना न भूलती थीं। घर से अपनी पौत्रियों के लिए लाए मिष्ठान्न में से प्राय: सभी बँट जाता था। देखने वाला यह जान ही नहीं सकता था कि वह सबकी इया, अइया अर्थात दादी नहीं हैं।

गंगा-स्नान के लिए तो मुझे उनके साथ प्राय: जाना पड़ता था। उस दिन संगम पर जितना दूध मिलता, जितने फूल दिखाई देते सब उनकी ओर से ही गंगा-यमुना की भेंट हो जाते। कोलाहल करते हुए पंडों की पूरी पलटन उन्हें घेर लेती थी, पर वे बिना विचलित हुए शांत भाव से प्रत्येक को उसका प्राप्य देती चलती थीं।

बालिकाओं के संबंध में राजेंद्र बाबू का स्पष्ट निर्देश था कि वे सामान्य बालिकाओं के साथ बहुत सादगी और संयम से रहें। वे खादी के कपड़े पहनती थीं, जिन्हें वे स्वयं ही धो लेती थीं। उनके साबुन, तेल आदि का

व्यय भी सीमित था। कमरे की सफ़ाई, झाड़-पोंछ, गुरुजनों की सेवा आदि भी उनके अध्ययन के आवश्यक अंग थे।

उस समय संघर्ष के सैनिकों का गंतव्य जेल ही रहता था, अतः प्रायः किसी की पत्नी, किसी की बहन, किसी की बेटी विद्यापीठ के छात्रावास से अनुपस्थित होती थी। स्वतंत्रता के उपरांत उनमें से कुछ दिल्ली चली गईं और कुछ विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए अंग्रेज़ी के विद्यालयों में भर्ती हो गईं। केवल राजेंद्र बाबू की पौत्रियाँ अपवाद रहीं। राजेंद्र बाबू के भारत के प्रथम राष्ट्रपति हो जाने के उपरांत मुझे स्वयं उनकी पौत्रियों के संबंध में चिंता हुई। उनका स्पष्ट उत्तर मिला, "महादेवी बहन, दिल्ली मेरी नहीं है, राष्ट्रपति-भवन मेरा नहीं है। अहंकार से मेरी पोतियों का दिमाग खराब न हो जाए, तुम केवल इसकी चिंता करो। वे जैसे रहती आई हैं, उसी प्रकार रहेंगी। कर्तव्य विलास नहीं, कर्मनिष्ठा है।"

उनकी सहधर्मिणी में भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जब राष्ट्रपति-भवन में उनके कमरे से संलग्न रसोईघर बन गया तब वे दिल्ली गईं और अंत तक स्वयं भोजन बनाकर सामान्य भारतीय गृहिणी के समान पति, परिवार तथा परिजनों को खिलाने के उपरांत स्वयं अन्न ग्रहण करती थीं।

उस विशाल भवन में यदि अपने अद्भुत आतिथ्य की बात न कहूँ, तो कथा अधूरी रह जाएगी। बालिकाओं की दादी ने मुझे दिल्ली आने का विशेष निमंत्रण तो दिया ही, साथ ही, प्रयाग से सिरकी के बने एक दर्जन सूप लाने का भी आदेश दिया। उन्होंने बार-बार आग्रह किया कि मैं उनके लिए इतना कष्ट अवश्य उठाऊँ, क्योंकि फटकने-पछोरने के लिए सिरकी के सूप बहुत अच्छे होते हैं, पर कोई उन्हें लाने वाला ही नहीं मिलता।

प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बारह सूपों के टाँगने पर जो दृश्य उपस्थित हुआ, उससे भी अधिक विचित्र दृश्य तब प्रत्यक्ष हुआ, जब राष्ट्रपति-भवन से आई बड़ी कार पर यह उपहार लादा गया। राष्ट्रपति-भवन के हर द्वार पर सलाम ठोंकने वाले सिपाहियों की आँखें विस्मय से खुली रह गईं। ऐसी भेंट लेकर कोई अतिथि न कभी वहाँ पहुँचा था, न पहुँचेगा। पर भवन की तत्कालीन स्वामिनी ने मुझे अंक में भर लिया।

राजेंद्र बाबू तथा उनकी सहधर्मिणी सप्ताह में एक दिन अन्न नहीं ग्रहण करते थे। संयोग से मैं उनके उपवास के दिन ही पहुँची, अत: उनकी यह जिज्ञासा स्वाभाविक थी कि मैं कैसा भोजन पसंद करूँगी। उपवास में भी आतिथेय का साथ देना उचित समझकर मैंने निरन्न भोजन की ही इच्छा प्रकट की। फलाहार के साथ उत्तम खाद्य पदार्थों की कल्पना स्वाभाविक रहती है। सामान्यत: हमारा उपवास अन्य दिनों के भोजन की अपेक्षा अधिक व्ययसाध्य हो जाता है, क्योंकि उस दिन हम भाँति-भाँति के फल, मेवे, मिष्ठान्न आदि एकत्र कर लेते हैं।

मुझे आज भी वह संध्या नहीं भूलती, जब भारत के प्रथम राष्ट्रपति को मैंने सामान्य आसन पर बैठ कर दिन भर के उपवास के उपरांत केवल कुछ उबले आलू खाकर पारायण करते देखा। मुझे भी वही खाते देखकर उनकी दृष्टि में संतोष और होंठों पर बालकों जैसी सरल हँसी छलक उठी।

जीवन मूल्यों की परख करने वाली दृष्टि के कारण उन्हें देशरत्न की उपाधि मिली और मन की सरल स्वच्छता ने उन्हें अजातशत्रु बना दिया। अनेक बार प्रश्न उठता है, क्या वह साँचा टूट गया जिसमें ऐसे कठिन कोमल चरित्र ढलते थे।

– **महादेवी वर्मा**

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. राजेंद्र बाबू को लेखिका ने पहले-पहल कहाँ देखा था?
2. राजेंद्र बाबू का चेहरा लोगों को जाना-पहचाना-सा क्यों लगता था?
3. अपनी वेशभूषा के प्रति सावधानी बरतने के प्रयत्न में राजेंद्र बाबू कहाँ तक सफल हो पाते थे?
4. राजेंद्र बाबू की पत्नी सीधी खड़ी क्यों नहीं हो पाती थीं?
5. राजेंद्र बाबू एवं उनकी पत्नी का फलाहार सामान्यतः अपेक्षित फलाहार से किस प्रकार भिन्न था?

(ख) लिखित

1. लेखिका ने राजेंद्र बाबू से पहली भेंट के समय के वातावरण को गद्‌यात्मक क्यों कहा है?
2. राजेंद्र बाबू के व्यक्तित्व में से लेखिका ने कुछ भी जोड़ना-घटाना संभव क्यों नहीं माना है?
3. राजेंद्र बाबू की वेशभूषा में लेखिका को विचित्र स्वच्छंदतावाद क्यों दिखाई दिया?
4. लेखिका ने राजेंद्र बाबू के निजी सचिव चक्रधर जी के विषय में ऐसा क्यों कहा – "मैंने ऐसे गुरु-शिष्य या स्वामी-सेवक फिर अब तक नहीं देखे।"
5. लेखिका ने राजेंद्र बाबू की पत्नी सच्चे अर्थों में धरती की पुत्री थीं, ऐसा क्यों कहा है?
6. पाठ में आए हुए विभिन्न प्रसंगों के आधार पर सिद्‌ध कीजिए कि "राजेंद्र बाबू कठिन कोमल चरित्र के धनी थे।"
7. आशय स्पष्ट कीजिए –
   (क) कर्तव्य विलास नहीं, कर्मनिष्ठा है।
   (ख) अनेक बार प्रश्न उठता है, क्या वह साँचा टूट गया जिसमें ऐसे कठिन कोमल चरित्र ढलते थे।
   (ग) परंतु उस गद्‌य ने कितने भावात्मक क्षणों की अटूट माला गूँथी है।

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों को शुद्ध उच्चारण करते हुए बोलकर पढ़िए –
स्टेशन, स्मृति, स्थान, स्तंभ, स्नेह, स्तर, स्थिति, स्नान, स्त्री, स्थिर
क से प वर्ग के अक्षरों से पहले स्वर रहित स (स्) से प्रारंभ होने वाले संयुक्ताक्षरों का उच्चारण करते समय 'अ', 'ई', या 'स' का प्राय: आगम हो जाता है; जैसे – स्कूल (इस्कूल, अस्कूल, सकूल), स्नान (अस्नान, इस्नान, सनान) आदि ये दोषपूर्ण हैं।

2. पाठ में ऐसी अनेक लोकभाषाओं के शब्द आए हैं जिनके स्रोत की जानकारी नहीं मिलती। ऐसे शब्दों को 'देशज शब्द' कहते हैं। नीचे लिखे शब्दों में से देशज शब्दों को चुनकर लिखिए –
सूप, मिट्टी, फेंटा, पछोरना, अइया, झाँई, सिरकी, अहंकार, फटकना, दृश्य, अतिथि, झाड़-पोंछ, बेंच, धोती।

3. संज्ञा शब्दों में कुछ प्रत्ययों को जोड़ने से विशेषण शब्द बन जाते हैं; जैसे – रोम + इल = रोमिल, दया + आलु = दयालु, श्याम + ल = श्यामल।
नीचे लिखे शब्दों में यथास्थान 'इल', 'आलू', 'ल' प्रत्यय लगाकर संज्ञा शब्द बनाइए – बोझ, शीत, कृपा, ममता, सर्प, चोट, झगड़ा।

4. कई पदों से बना वाक्यांश जब एक ही पद का काम करता है उसे पदबंध कहते हैं। पदबंध मुख्य रूप से चार प्रकार के हैं – संज्ञा पदबंध, विशेषण पदबंध, क्रिया पदबंध तथा क्रिया विशेषण पदबंध।
मोटे, खुरदरे, काले और बंद गले के कोट में, ऊपर का भाग बटन टूट जाने के कारण खुला था।
उक्त वाक्य में रेखांकित पद-समूह संज्ञा का कार्य कर रहा है, इसलिए इसे 'संज्ञा पदबंध' कहते हैं। नीचे लिखे वाक्यों में आए संज्ञा पदबंधों को रेखांकित कीजिए –
(क) उनके शरीर के संपूर्ण गठन में एक सामान्य भारतीय जन की आकृति और गठन की छाया थी।
(ख) बिहार के जमींदार परिवार की वधू और स्वातंत्र्य युद्ध के अपराजेय सेनानी की पत्नी होने का उन्हें कभी अहंकार नहीं हुआ।

(ग) संभ्रांत जमींदार परिवार की परंपरा के अनुसार उन्हें घंटों सिर नीचा करके एकासन बैठना पड़ता था।

योग्यता-विस्तार

पुस्तकालय तथा अन्य स्रोतों से राजेंद्र बाबू के बाद के भारत के विभिन्न राष्ट्रपतियों के बारे में जानकारी प्राप्त कीजिए और अपनी जानकारी के आधार पर बताइए कि उनमें से किसके गुणों से आप अधिक प्रभावित हुए और क्यों?

शब्दार्थ और टिप्पणी

गद्यात्मक – सादा, सामान्य
विहंगम दृष्टि – पूरा-पूरा देखना, एक सरसरी निगाह
अनुभूति – महसूस करना
संवेदना – सहानुभूति, दुख को महसूस करने की भावना
गरिमा – गौरव, महत्त्व
गवाक्ष – सूराख, झरोखा
परिधान – वस्त्र
प्रसाधित करना – सजाना-सँवारना
सहधर्मिणी – गृहस्थ धर्म में साथ देने वाली, धर्मपत्नी
सूत्रधारिणी – संचालन करने वाली
एकासन – बैठने की एक ही मुद्रा
अपवाद – सामान्य नियम से भिन्न
प्राप्य – पाने योग्य, जो मिलना चाहिए
विलास – सुखोपभोग, मौज-मस्ती
कर्मनिष्ठा – कर्म के प्रति समर्पण
संभ्रांत – कुलीन, अभिजात
अपराजेय – अविजित, जिसे पराजित न किया जा सके
सिरकी – सींक

सूप	–	अनाज साफ़ करने का पात्र, छाज
अंक भरना	–	आलिंगन में लेना, गले लगाना
संयोग	–	इत्तिफ़ाक, आकस्मिकता
उपवास	–	व्रत
आतिथेय	–	मेजबान, अतिथि का स्वागत करने वाला
निरन्न	–	बिना अन्न का
व्ययसाध्य	–	खर्चीला
पारायण	–	व्रत की समाप्ति
अजातशत्रु	–	जिसका कोई शत्रु न हो

18. क्या निराश हुआ जाए



(आज भारतवर्ष में ऐसी स्थिति देखने को मिलती है कि ईमानदार व्यक्ति जीवन में बहुत कष्ट उठा रहे हैं और बेईमान, धोखेबाज़ लोग खूब फल-फूल रहे हैं। किंतु लेखक ने इस निबंध में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि सच्चाई, ईमानदारी जैसे सद्गुण अभी लुप्त नहीं हुए हैं। जन साधारण में, संचार माध्यमों में भ्रष्टाचार आदि के प्रति आक्रोश यही प्रमाणित करता है। आए दिन होने वाली अनेक अप्रिय घटनाओं की तुलना में मानवीय पक्ष को उभारने वाली कोई भी एक घटना अपेक्षाकृत कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है और उसकी अनदेखी नहीं करनी चाहिए। इसी आधार पर महान भारतवर्ष को पाने की संभावना बनी हुई है, बनी रहेगी।)

मेरा मन कभी-कभी बैठ जाता है। समाचारपत्रों में ठगी, डकैती, चोरी, तस्करी और भ्रष्टाचार के समाचार भरे रहते हैं। आरोप-प्रत्यारोप का कुछ ऐसा वातावरण बन गया है कि लगता है, देश में कोई ईमानदार आदमी ही नहीं रह गया है। हर व्यक्ति संदेह की दृष्टि से देखा जा रहा है। जो जितने ही ऊँचे पद पर हैं, उनमें उतने ही अधिक दोष दिखाए जाते हैं।

एक बहुत बड़े आदमी ने मुझसे एक बार कहा था कि इस समय सुखी वही है, जो कुछ नहीं करता। जो कुछ भी करेगा उसमें लोग दोष खोजने लगेंगे। उसके सारे गुण भुला दिए जाएँगे और दोषों को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया जाने लगेगा। दोष किसमें नहीं होते? यही कारण है कि हर आदमी दोषी अधिक दीख रहा है, गुणी कम या बिलकुल ही नहीं। स्थिति अगर ऐसी है तो निश्चय ही चिंता का विषय है।

क्या यही भारतवर्ष है, जिसका सपना तिलक और गांधी ने देखा था? रवींद्रनाथ ठाकुर और मदनमोहन मालवीय का महान संस्कृति-सभ्य भारतवर्ष किस अतीत के गह्वर में डूब गया? आर्य और द्रविड़, हिंदू और मुसलमान, यूरोपीय और भारतीय आदर्शों की मिलन-भूमि 'मानव महा-समुद्र' क्या सूख ही गया? मेरा मन कहता है ऐसा हो नहीं सकता। हमारे महान मनीषियों के सपनों का भारत है और रहेगा।

यह सही है कि इन दिनों कुछ ऐसा माहौल बना है कि ईमानदारी से मेहनत करके जीविका चलाने वाले निरीह और भोले-भाले श्रमजीवी पिस रहे हैं और झूठ तथा फ़रेब का रोज़गार करनेवाले फल-फूल रहे हैं। ईमानदारी को मूर्खता का पर्याय समझा जाने लगा है, सच्चाई केवल भीरु और बेबस लोगों के हिस्से पड़ी है। ऐसी स्थिति में जीवन के महान मूल्यों के बारे में लोगों की आस्था ही हिलने लगी है।

परंतु ऊपर-ऊपर जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह बहुत ही हाल की मनुष्य-निर्मित नीतियों की त्रुटियों की देन है। सदा मनुष्य-बुद्धि नई परिस्थितियों का सामना करने के लिए नए सामाजिक विधि-निषेधों को बनाती है, उनके ठीक साबित न होने पर उन्हें बदलती है। नियम-कानून सबके लिए बनाए जाते हैं, पर सबके लिए कभी-कभी एक ही नियम सुखकर नहीं होते। सामाजिक कायदे-कानून कभी युग-युग से परीक्षित आदर्शों से टकराते हैं, इससे ऊपरी सतह आलोड़ित भी होती है, पहले भी हुआ है, आगे भी होगा। उसे देखकर हताश हो जाना ठीक नहीं है।

भारतवर्ष ने कभी भी भौतिक वस्तुओं के संग्रह को बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया है, उसकी दृष्टि से मनुष्य के भीतर जो महान आंतरिक तत्त्व स्थिर भाव से बैठा हुआ है, वही चरम और परम है। लोभ-मोह,

काम-क्रोध आदि विकार मनुष्य में स्वाभाविक रूप से विद्‌यमान रहते हैं, पर उन्हें प्रधान शक्ति मान लेना और मन तथा बुद्‌धि को उन्हीं के इशारे पर छोड़ देना बहुत निकृष्ट आचरण है। भारतवर्ष ने कभी भी उन्हें उचित नहीं माना, उन्हें सदा संयम के बंधन से बाँधकर रखने का प्रयत्न किया है। परंतु भूख की उपेक्षा नहीं की जा सकती, बीमार के लिए दवा की उपेक्षा नहीं की जा सकती, गुमराह को ठीक रास्ते पर ले जाने के उपायों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

हुआ यह है कि इस देश के कोटि-कोटि दरिद्रजनों की हीन अवस्था को दूर करने के लिए ऐसे अनेक कायदे-कानून बनाए गए हैं जो कृषि, उद्‌योग, वाणिज्य, शिक्षा और स्वास्थ्य की स्थिति को अधिक उन्नत और सुचारु बनाने के लक्ष्य से प्रेरित हैं, परंतु जिन लोगों को इन कार्यों में लगना है, उनका मन सब समय पवित्र नहीं होता। प्रायः वे ही लक्ष्य को भूल जाते हैं और अपनी ही सुख-सुविधा की ओर ज्यादा ध्यान देने लगते हैं।

व्यक्ति-चित्त सब समय आदर्शों द्‌वारा चालित नहीं होता। जितने बड़े पैमाने पर इन क्षेत्रों में मनुष्य की उन्नति के विधान बनाए गए, उतनी ही मात्रा में लोभ, मोह जैसे विकार भी विस्तृत होते गए। लक्ष्य की बात भूल गए। आदर्शों को मज़ाक का विषय बनाया गया और संयम को दकियानूसी मान लिया गया। परिणाम जो होना था, वह हो रहा है। यह कुछ थोड़े-से लोगों के बढ़ते हुए क्षोभ का नतीजा है, परंतु इससे भारतवर्ष के पुराने आदर्श और भी अधिक स्पष्ट रूप से महान और उपयोगी दिखाई देने लगे हैं।

भारतवर्ष सदा कानून को धर्म के रूप में देखता आ रहा है। आज एकाएक कानून और धर्म में अंतर कर दिया गया है। धर्म को धोखा नहीं

दिया जा सकता, कानून को दिया जा सकता है। यही कारण है कि जो लोग धर्मभीरु हैं, वे कानून की त्रुटियों से लाभ उठाने में संकोच नहीं करते।

इस बात के पर्याप्त प्रमाण खोजे जा सकते हैं कि समाज के ऊपरी वर्ग में चाहे जो भी होता रहा हो, भीतर-भीतर भारतवर्ष अब भी यह अनुभव कर रहा है कि धर्म कानून से बड़ी चीज़ है। अब भी सेवा, ईमानदारी, सच्चाई और आध्यात्मिकता के मूल्य बने हुए हैं। वे दब अवश्य गए हैं, लेकिन नष्ट नहीं हुए हैं। आज भी वह मनुष्य से प्रेम करता है, महिलाओं का सम्मान करता है, झूठ और चोरी को गलत समझता है, दूसरे को पीड़ा पहुँचाने को पाप समझता है। हर आदमी अपने व्यक्तिगत जीवन में इस बात का अनुभव करता है। समाचारपत्रों में जो भ्रष्टाचार के प्रति इतना आक्रोश है, वह यही साबित करता है कि हम ऐसी चीज़ों को गलत समझते हैं और समाज में उन तत्त्वों की प्रतिष्ठा कम करना चाहते हैं, जो गलत तरीके से धन या मान संग्रह करते हैं।

दोषों का पर्दाफ़ाश करना बुरी बात नहीं है। बुराई यह मालूम होती है कि किसी के आचरण के गलत पक्ष को उद्घाटित करके उसमें रस लिया जाता है और दोषोद्घाटन को एकमात्र कर्तव्य मान लिया जाता है। बुराई में रस लेना बुरी बात है, अच्छाई में उतना ही रस लेकर उजागर न करना और भी बुरी बात है। सैकड़ों घटनाएँ ऐसी घटती हैं, जिन्हें उजागर करने से लोक-चित्त में अच्छाई के प्रति अच्छी भावना जगती है।

एक बार रेलवे स्टेशन पर टिकट लेते हुए गलती से मैंने दस के बजाय सौ रुपए का नोट दिया और मैं जल्दी-जल्दी गाड़ी में आकर बैठ गया। थोड़ी देर में टिकट बाबू उन दिनों के सेकंड क्लास के डिब्बे में हर आदमी का चेहरा पहचानता हुआ उपस्थित हुआ। उसने मुझे पहचान लिया

और बड़ी विनम्रता के साथ मेरे हाथ में नब्बे रुपए रख दिए और बोला, "यह बहुत गलती हो गई थी। आपने भी नहीं देखा, मैंने भी नहीं देखा।" उसके चेहरे पर विचित्र संतोष की गरिमा थी। मैं चकित रह गया।

कैसे कहूँ कि दुनिया से सच्चाई और ईमानदारी लुप्त हो गई है, वैसी अनेक अवांछित घटनाएँ भी हुई हैं, परंतु यह एक घटना ठगी और वंचना की अनेक घटनाओं से अधिक शक्तिशाली है।

एक बार मैं बस में यात्रा कर रहा था। मेरे साथ मेरी पत्नी और तीन बच्चे भी थे। बस में कुछ खराबी थी, रुक-रुक कर चलती थी। गंतव्य से कोई आठ किलोमीटर पहले ही एक निर्जन सुनसान स्थान में बस ने जवाब दे दिया। रात के कोई दस बजे होंगे। बस में यात्री घबरा गए। कंडक्टर उतर गया और एक साइकिल लेकर चलता बना। लोगों को संदेह हो गया कि हमें धोखा दिया जा रहा है।

बस में बैठे लोगों ने तरह-तरह की बातें शुरू कर दीं। किसी ने कहा, "यहाँ डकैती होती है, दो दिन पहले इसी तरह एक बस को लूटा गया था।" परिवार सहित अकेला मैं ही था। बच्चे पानी-पानी चिल्ला रहे थे। पानी का कहीं ठिकाना न था। ऊपर से आदमियों का डर समा गया था।

कुछ नौजवानों ने ड्राइवर को पकड़कर मारने-पीटने का हिसाब बनाया। ड्राइवर के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। लोगों ने उसे पकड़ लिया। वह बड़े कातर ढंग से मेरी ओर देखने लगा और बोला, "हम लोग बस का कोई उपाय कर रहे हैं, बचाइए, ये लोग मारेंगे।" डर तो मेरे मन में भी था, पर उसकी कातर मुद्रा देखकर मैंने यात्रियों को समझाया कि मारना ठीक नहीं है। परंतु यात्री इतने घबरा गए कि मेरी बात सुनने को तैयार नहीं हुए। कहने लगे,



"इसकी बातों में मत आइए, धोखा दे रहा है। कंडक्टर को पहले ही डाकुओं के यहाँ भेज दिया है।"

मैं भी बहुत भयभीत था, पर ड्राइवर को किसी तरह मार-पीट से बचाया। डेढ़-दो घंटे बीत गए। मेरे बच्चे भोजन और पानी के लिए व्याकुल थे। मेरी और पत्नी की हालत बुरी थी। लोगों ने ड्राइवर को मारा तो नहीं, पर उसे बस से उतार कर एक जगह घेर कर रखा। कोई भी दुर्घटना होती है तो पहले ड्राइवर को समाप्त कर देना उन्हें उचित जान पड़ा। मेरे गिड़गिड़ाने का कोई विशेष असर नहीं पड़ा। इसी समय क्या देखता हूँ कि एक खाली बस चली आ रही है और उस पर हमारा बस कंडक्टर भी बैठा हुआ है। उसने आते ही कहा, "अड्डे से नई बस लाया हूँ, इस बस पर बैठिए। वह बस चलाने लायक नहीं है।" फिर मेरे पास एक लोटे में पानी और थोड़ा दूध लेकर आया और बोला, "पंडित जी!

बच्चों का रोना मुझसे देखा नहीं गया। वहीं दूध मिल गया, थोड़ा लेता आया।" यात्रियों में फिर जान आई। सबने उसे धन्यवाद दिया। ड्राइवर से माफ़ी माँगी और बारह बजे से पहले ही सब लोग बस अड्डे पहुँच गए।

कैसे कहूँ कि मनुष्यता एकदम समाप्त हो गई! कैसे कहूँ कि लोगों में दया-माया रह ही नहीं गई! जीवन में जाने कितनी ऐसी घटनाएँ हुई हैं, जिन्हें मैं भूल नहीं सकता।

ठगा भी गया हूँ, धोखा भी खाया है, परंतु बहुत कम स्थलों पर विश्वासघात नाम की चीज़ मिलती है। केवल उन्हीं बातों का हिसाब रखो, जिनमें धोखा खाया है तो जीवन कष्टकर हो जाएगा, परंतु ऐसी घटनाएँ भी बहुत कम नहीं हैं जब लोगों ने अकारण सहायता की है, निराश मन को ढाढ़स दिया है और हिम्मत बँधाई है। कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपने प्रार्थना गीत में भगवान से प्रार्थना की थी कि संसार में केवल नुकसान ही उठाना पड़े, धोखा ही खाना पड़े तो ऐसे अवसरों पर भी हे प्रभो! मुझे ऐसी शक्ति दो कि मैं तुम्हारे ऊपर संदेह न करूँ।

मनुष्य की बनाई विधियाँ गलत नतीजे तक पहुँच रही हैं तो इन्हें बदलना होगा। वस्तुतः आए दिन इन्हें बदला ही जा रहा है। लेकिन अब भी आशा की ज्योति बुझी नहीं है। महान भारतवर्ष को पाने की संभावना बनी हुई है, बनी रहेगी।

मेरे मन! निराश होने की ज़रूरत नहीं है।

– **हजारी प्रसाद द्विवेदी**

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. लेखक के अनुसार आज के समाज में कौन-कौन-सी बुराइयाँ दिखाई देती हैं?
2. क्या कारण है कि आज हर आदमी में दोष अधिक दिखाई दे रहे हैं और गुण कम?
3. लेखक दोषों का पर्दाफाश करते समय किस बात से बचने के लिए कहता है?
4. कुछ यात्री बस ड्राइवर को मारने के लिए क्यों उतारू हो गए थे?
5. टिकट-बाबू के चेहरे पर विचित्र संतोष की गरिमा लेखक को चकित क्यों कर गई?

(ख) लिखित

1. जीवन के महान मूल्यों के प्रति आज हमारी आस्था क्यों हिलने लगी है?
2. हमारे महापुरुषों के सपनों के भारत का क्या स्वरूप था?
3. भ्रष्टाचार आदि के विरुद्ध आक्रोश प्रकट करना किस बात को प्रमाणित करता है?
4. जो आज ऊपर-ऊपर दिखाई दे रहा है वह कहाँ तक मनुष्य-निर्मित नीतियों की त्रुटियों की देन है?
5. वर्तमान परिस्थितियों में भी हताश हो जाना ठीक नहीं है। इस कथन की पुष्टि में लेखक ने क्या-क्या उदाहरण दिए हैं?
6. रवींद्रनाथ ठाकुर ने भगवान से क्या प्रार्थना की और क्यों?
7. महान भारतवर्ष को पाने की संभावना बनी हुई है और बनी रहेगी। लेखक के इस कथन से हमें क्या संदेश मिलता है?
8. निम्नलिखित का आशय स्पष्ट कीजिए –
   (क) सामाजिक कायदे-कानून कभी युग-युग से परीक्षित आदर्शों से टकराते हैं।
   (ख) व्यक्ति-चित्त सब समय आदर्शों द्वारा चालित नहीं होता।
   (ग) धर्म को धोखा नहीं दिया जा सकता, कानून को दिया जा सकता है।
   (घ) महान भारतवर्ष को पाने की संभावना बनी हुई है, बनी रहेगी।

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित वाक्यों को अनुतान सहित पढ़िए –
   (क) दोष किसमें नहीं होते?
   (ख) आपने भी नहीं देखा, मैंने भी नहीं देखा।
   (ग) मेरे मन! निराश होने की ज़रूरत नहीं है।
   (घ) कैसे कहूँ कि मनुष्यता एकदम समाप्त हो गई!
   (ङ) क्या यही भारतवर्ष है, जिसका सपना तिलक और गांधी ने देखा था?
   (च) दोषों का पर्दाफ़ाश करना बुरी बात नहीं है।
   (छ) हे प्रभो! मुझे ऐसी शक्ति दो कि मैं तुम्हारे ऊपर संदेह न करूँ।
   (ज) अड्डे से नई बस लाया हूँ, इस बस पर बैठिए।
2. पाठ में 'प्रविशेषण' के कई रूप आए हैं। प्रविशेषण संज्ञा की बजाय विशेषण की विशेषता बताते हैं; जैसे –
   (क) भारतवर्ष ने कभी भी भौतिक वस्तुओं के संग्रह को **बहुत** अधिक महत्त्व नहीं दिया है।
   (ख) वह **बड़े** कातर ढंग से मेरी ओर देखने लगा।

   उपर्युक्त वाक्य 'क' में 'अधिक' विशेषण है और उसकी विशेषता बताने वाला विशेषण 'बहुत' है, अत: 'बहुत' प्रविशेषण है। इसी प्रकार वाक्य 'ख' में 'कातर' विशेषण का प्रविशेषण 'बड़े' है।

   इसी प्रकार पाँच प्रविशेषण विशेषण सहित लिखिए।
3. पाठ में कई प्रकार के सर्वनाम मिल जाते हैं; जैसे – मैं, मेरा (उत्तम पुरुष सर्वनाम); आप (मध्यम पुरुष सर्वनाम); वह, उस (अन्य पुरुष सर्वनाम); जो (संबंधवाचक सर्वनाम); कोई, कुछ (अनिश्चयवाचक सर्वनाम); कौन (प्रश्नवाचक सर्वनाम); अपने (निश्चयवाचक सर्वनाम)।

   निम्नलिखित वाक्यों में से सर्वनाम छाँटते हुए उनके नाम बताइए –
   (क) मेरा मन कभी-कभी बैठ जाता है।
   (ख) दोष किसमें नहीं होता।
   (ग) इन दिनों कुछ ऐसा माहौल बना है।

(घ) आज भी वह मनुष्य से प्रेम करता है।

(ङ) रात के कोई दस बजे होंगे।

(च) तुम्हारी पुस्तकें ये हैं।

(छ) एक बार मैं बस में यात्रा कर रहा था।

(ज) जो जितने ही ऊँचे पद पर हैं, उनमें उतने ही अधिक दोष दिखाए जाते हैं।

(झ) हर आदमी अपने व्यक्तिगत जीवन में यह अनुभव करता है।

4. इस पाठ में सरल, मिश्र और संयुक्त तीन प्रकार के वाक्य हैं। नीचे दिए गए वाक्यों को पढ़िए और बताइए कि वे किस प्रकार के वाक्य हैं –

(क) उसके सारे गुण भुला दिए जाएँगे और दोषों को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया जाने लगेगा।

(ख) एक बार मैं बस में यात्रा कर रहा था।

(ग) इस समय सुखी वही है जो कुछ नहीं करता।

(घ) आदर्शों को मज़ाक का विषय बनाया गया और संयम को दकियानूसी मान लिया गया है।

(ङ) यह सही है कि इन दिनों कुछ ऐसा माहौल बना है कि ईमानदारी से मेहनत करके जीविका चलाने वाले निरीह और भोले-भाले श्रमजीवी पिस रहे हैं और झूठ तथा फ़रेब का रोज़गार करने वाले फल-फूल रहे हैं।

योग्यता-विस्तार

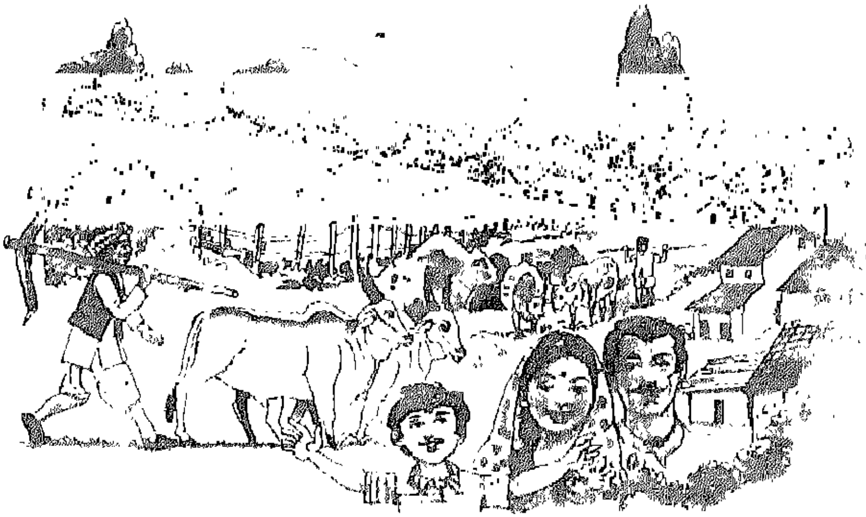
1. 'भारत का भविष्य निराशाजनक है।' विषय पर कक्षा में वाद-विवाद आयोजित कीजिए।
2. अपने अध्ययन अथवा अनुभव के आधार पर किसी ऐसी घटना का वर्णन लिखिए जब किसी अनजान व्यक्ति ने निःस्वार्थ भाव से दूसरों की सहायता की हो।

शब्दार्थ और टिप्पणी

गह्वर – गुफ़ा, गहराई

मनीषी – विचारक, विद्वान

भीरु	-	डरपोक, कायर
निरीह	-	असहाय, बेचारा
आस्था	-	विश्वास
मूल्य	-	(जीवन मूल्य) आदर्श
विधि-निषेध	-	करने-न करने के नियम
परीक्षित	-	कसौटी पर आजमाए हुए
आलोड़ित	-	उथल-पुथल युक्त, हिलोरें लेता हुआ
विकार	-	बुराई, दोष
दकियानूसी	-	पुराने विचारों से चिपका रहने वाला, पुरातनपंथी
प्रतिष्ठा	-	सम्मान
पर्दाफ़ाश करना	-	भेद खोलना
दोषोद्घाटन	-	बुराइयाँ बताना, कमियों को प्रकट करना
अवांछित	-	अनचाही
कातर मुद्रा	-	डरा हुआ रूप
वंचना	-	धूर्तता



19. फूटा प्रभात

(प्रस्तुत कविता में कवि ने प्रात:कालीन सौंदर्य का चित्रण किया है। प्रात:काल होते ही क्षितिज पर लाली छा गई है। अँधेरा मिट गया है। कलियों, फूलों, भौरों, सरिताओं, बच्चों, पक्षियों और वन-वृक्षों में नया जीवन आ गया है।)

फूटा प्रभात, फूटा विहान
बह चले रश्मि के प्राण, विहग के गान, मधुर निर्झर के स्वर
झर-झर, झर-झर।
प्राची का अरुणाभ क्षितिज,
मानो अंबर की सरसी में
फूला कोई रक्तिम गुलाब, रक्तिम सरसिज।

धीरे-धीरे,
लो, फैल चली आलोक रेख
घुल गया तिमिर, बह गई निशा;
चहुँ ओर देख,
धुल रही विभा, विमलाभ कांति।
अब दिशा-दिशा
सस्मित,
विस्मित,
खुल गए द्वार, हँस रही उषा।

खुल गए द्वार, दृग खुले कंठ
खुल गए मुकुल
शतदल के शीतल कोषों से निकला मधुकर गुंजार लिए
खुल गए बंध, छवि के बंधन।

जागो जगती के सुप्त बाल!
पलकों की पंखुरियाँ खोलो, खोलो मधुकर के अलस बंध
दृग भर
समेट तो लो यह श्री, यह कांति
बही आती दिगंत से यह छवि की सरिता अमंद
झर-झर, झर-झर।

फूटा प्रभात, फूटा विहान,
छूटे दिनकर के शर ज्यों छवि के वह्नि-बाण
(केशर-फूलों के प्रखर बाण)
आलोकित जिनसे धरा
प्रस्फुटित पुष्पों से प्रज्वलित दीप,
लौ-भरे सीप।

फूटीं किरणें ज्यों वह्नि-बाण, ज्यों ज्योति-शल्य
तरु-वन में जिनसे लगी आग।
लहरों के गीले गाल, चमकते ज्यों प्रवाल,
अनुराग-लाल।

– भारत भूषण अग्रवाल

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

(क) मौखिक

1. कविता से उन पंक्तियों को पढ़कर सुनाओ, जिनमें प्रातःकालीन क्षितिज की लालिमा में गुलाब तथा कमल की लालिमा को आरोपित किया गया है।
2. प्रातःकाल का चिड़ियों और भौंरों पर क्या प्रभाव पड़ा?

3. फूलों को 'जलते दीप' और 'लौ-भरे सीप' क्यों कहा गया है?
4. निम्नलिखित पद-बंधों की क्या विशेषता है –
   (क) हँस रही उषा
   (ख) लहरों के गीले गाल
   (ग) छवि के वह्नि-बाण
5. लहरों के गालों की चमक की संभावना कवि ने किससे की है?

(ख) लिखित

1. प्रातःकाल होने पर प्रकृति में क्या-क्या परिवर्तन दिखलाई पड़ते हैं?
2. आशय स्पष्ट कीजिए –
   (क) बह चले रश्मि के प्राण
   (ख) घुल गया तिमिर, बह गई निशा
   (ग) फूटी किरणें ज्यों वह्नि-बाण, ज्यों ज्योति-शल्य
3. उषा काल की दिशाओं को 'सस्मित' और 'विस्मित' क्यों कहा गया है?
4. सोते बच्चों को कवि ने क्या सलाह दी है?
5. वन-वृक्षों में आग लगने से क्या आशय है? कवि ने इसका क्या कारण बताया है?

योग्यता-विस्तार

1. निम्नलिखित पंक्तियों के भाव-सौंदर्य की तुलना प्रस्तुत कविता से कीजिए –

   उषा सुनहले तीर बरसाती, जय लक्ष्मी-सी उदित हुई।
   उधर पराजित काल्-रात्रि भी, जल में अंतर्निहित हुई।

   – जय शंकर प्रसाद

2. प्रातःकाल के सौंदर्य पर लिखी गई कुछ अन्य कविताओं का संकलन कीजिए।

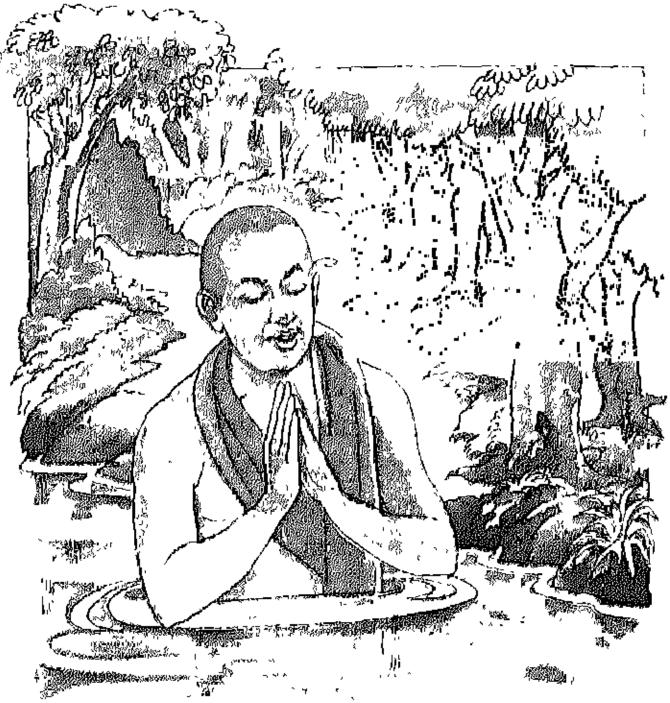
शब्दार्थ और टिप्पणी

विहान – प्रभात, सवेरा
विहग – पक्षी
रश्मि – किरण
निर्झर – झरना
अरुणाभ – लाल आभा से युक्त
क्षितिज – जहाँ पृथ्वी और आकाश मिलते दिखाई दें, दिशा का छोर
रक्तिम – लाल
सरसिज – कमल
तिमिर – अंधकार
निशा – रात्रि
विभा – प्रकाश
विमलाभ कांति – पवित्र प्रकाश
सस्मित – मुसकान से भरा हुआ
विस्मित – चकित
दृग – नेत्र, आँख
मुकुल – कली
शतदल – कमल
मधुकर – भँवरा
अलस – आलस
दिगंत – क्षितिज, दिशा का छोर
वह्नि-बाण – अग्नि बाण
प्रस्फुटित – खिला हुआ
प्रज्वलित – प्रकाशित
प्रवाल – मूँगा, रत्न
अनुराग – प्रीति, अनुरक्ति

20. शांति

(प्रस्तुत लघु रूपक-कथा बालमन और प्रौढ़मन की भावनाओं के अंतर की सुंदर अभिव्यक्ति है। इस कथा में चील, भील और साँप से संबंधित जो तीन प्रसंग पिरोए गए हैं उनमें केवल पात्रों का ही अंतर है, घटना और संदेश एक ही है। इन तीन विभिन्न प्राणियों के शिशु जहाँ मन की निश्छलता, संपूर्ण जीव-जगत के प्रति दया-भाव, माँ के लिए अगाध प्रेम और उसके दुख की कल्पना मात्र से ही विह्वल होकर अपने भोज्य पदार्थ को त्यागने के लिए तत्पर हो जाते हैं वहीं उनके माता-पिता अपने संस्कारों में जकड़े अपने सहजात स्वभाव को नहीं छोड़ पाते और उसी के अनुसार कार्य करते हैं।)

सूरज काले बादलों से धीरे-धीरे निकलने लगा था। जंगल में से गुजरनेवाली नदी में खड़े अर्घ्यदान में लीन एक संन्यासी मन-ही-मन सोच रहा था – "हे ईश्वर। तुम प्रकाशमान हो! तुम ही धरती पर होने वाले अंधकार के संहारक हो! धरती का अँधेरा तो तुम नष्ट करते हो, परंतु इस धरती पर होने वाले लोगों के मन के अँधेरे को तुम कब दूर करोगे? उसे घट-घट में रमे राम के दर्शन कब होंगे? हे दयानिधान! मुझे विश्वास है कि दुनिया को घेरे अशांति के दावानल को सिर्फ़ तुम्हीं शांत कर पाओगे। शांति के विधान के लिए मैं अपना तप, सुख, स्वर्ग सब न्योछावर करने के लिए तैयार हूँ। कुछ भी करो, पर इस दुनिया में अमन, शांति का साम्राज्य फैला दो। मैं ऐसी सुंदर दुनिया देखना चाहता हूँ, जहाँ सिंह की पीठ पर खरगोश खेलता हो, उकाब की गोद में साँप सोया हो और सभी जन एक हों।"



उसी समय एक चील अपने घोंसले से झाँककर सूरज को देख रही थी। सूरज के दर्शन से उसे बेहद प्रसन्नता हुई। शायद उसे मुर्गी के छोटे, पिलपिले चूज़ों का स्मरण हो आया था।

उसका चकुला पीछे से आकर उसकी गोद में दुबकने का प्रयास करने लगा। उसे चूमकर चील बोली, "देखो बेटे, अब आखेट का समय हुआ। मैं पलभर में लौट आऊँगी। कल तुम अपने घोंसले से निकलने की कोशिश कर रहे थे। प्यारे, शायद तुम नहीं जानते हो कि तुम्हारे पंख अब भी कमज़ोर हैं। तुम सामने वाला वह जो नीला आकाश देखते हो न, वहाँ

एक डायन हमेशा दाँव लगाकर बैठी रहती है। वह तुम्हारे जैसे मासूम चकुलों को इशारा करके अपनी ओर बुलाती है और फिर ठगकर उन्हें अपने घोंसले में भगा ले जाती है। गीत गाकर वह तुम्हें बहकाएगी। बादलों में छिपे सुंदर हाथी, घोड़ों का वह तुम्हें प्रलोभन दिखाएगी। पर देखो बेटे, एक बात याद रखना, चकुलों को ठगकर उनका पिलपिला मांस खानेवाली दुष्ट डायन है यह! उसकी चपेट में मत आना। मेरी कसम, तुम अपने घोंसले से मत निकलना! मैं आज तुम्हारे लिए सुंदर-सा सँपोला लाऊँगी। समझे! मेरी बातों का खयाल रखना, भूलना नहीं।"

"सँपोला माने?" चकुले ने प्रश्न किया।

"सँपोले का गोश्त बहुत मीठा होता है। मात्र बखान से थोड़ी समझ में आएगा। बेहतर है कि उसे एक बार चखा जाए...."

"उस सँपोले की माँ नहीं होती?" चकुले ने पूछा।

चील मौन रह गई।

"यदि तुम उसे पकड़ोगी तो क्या उसकी माँ नहीं रोएगी?"

"तुम कितने मासूम हो मेरे बच्चे! अरे पागल, साँप की और हमारी जाति अलग-अलग है। उनका और हमारा खून भी अलग है बेटे! उसके साथ हमारी दुश्मनी तो सदियों पुरानी है।"

"दुश्मनी से मतलब?"

"साँप चील का बैरी होता है।"

"बैरी माने?"

"बैरी को मारा जाता है।"

"क्यों?"

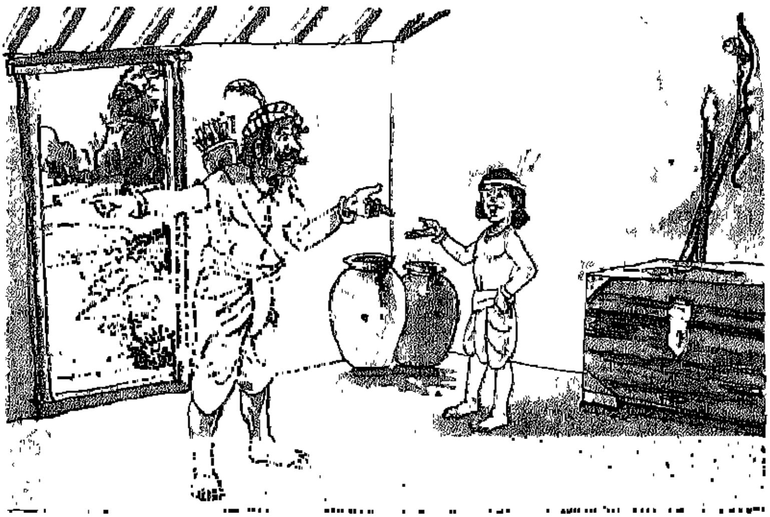
"पेट के लिए।"

"फिर हम कुछ और खा लें तो....।"

"पागल कहीं के। तुम्हें जंगल के उस संन्यासी की संतान होना चाहिए था। लगता है, तुम गलती से मेरी कोख में आ गए हो।" अपने चकुले को फिर प्यार से चूमकर चील ने आकाश में छलाँग लगाई। फिर अचानक वह धरती की ओर चली। मानो आकाश से धरती की ओर आनेवाला कोई वायुयान हो।

उसी समय एक भील धनुष-बाण लेकर अपनी झोंपड़ी से निकल रहा था। अपने इकलौते, प्यारे बेटे को चूमकर बोला, "कल तुम अपने घर से निकलकर जंगल में रंग-बिरंगे फूलों को बटोरते दूर तक भटक रहे थे न? आज वैसी हरकत मत करना। जंगल के इन झाड़-झंखाड़ों में ज़हरीले साँप होते हैं। उनके काटने का डर हमेशा बना होता है। अपना खयाल रखना।"

"पर बाबा..."



"पर-वर कुछ नहीं। कल तूने चकुले के लिए ज़िद की थी न? आज मैं उसे ज़रूर ला दूँगा। पहले शिकार तेरे लिए, फिर अपने लिए। मंज़ूर?"

"क्या उसके माँ नहीं होती?" बेटे ने पूछा।

"पागल, बिना माँ के चकुला थोड़े होगा?"

"फिर मेरे लिए वह चकुला मत लाओ। यदि तुम उसे पकड़ोगे तो उसकी माँ रोएगी। कल जब मैं रास्ता भूल गया था तो रो-रोकर माँ की आँखें सूज आई थीं।"

प्यार से थपथपाकर भील ने उसे समझाया, "तुम्हें जंगल के उस संन्यासी की संतान होना चाहिए था। गलती से तुमने यहाँ जन्म लिया। अरे पागल, मनुष्य और पंछी की जाति एक थोड़े है? जाओ, तीर से खेलो। भागो!"

अपने बेटे के कंधों को प्यार से थपथपाकर भील शिकार के लिए निकल पड़ा। वह तीर-कमान सँभालता हुआ तेज़ी से बढ़ने लगा। मानो कोई मुस्तैद सैनिक अपनी मातृभूमि की रक्षा की धुन में निकल पड़ा हो! उसी समय सँपोले ने अपनी माँ से कहा,

"देखो माँ, धूप तेज़ हो चुकी है। चलो, हम अपने घर चलें।"

माँ गुस्से में थी। बोली, "नहीं। और थोड़ी देर रुक जाओ। भील के आने का समय हो चुका है। उसको काटे बगैर मुझे चैन नहीं आएगा।"

"उसने कल तुम्हें गलती से कुचला होगा। इतनी-सी बात पर तुनक जाना ठीक नहीं। मैं तो तुम्हारे शरीर पर कितनी बार कूदता-फाँदता रहता हूँ।"

"तुम निपट पागल हो बेटे। तुम्हें जंगल के उस संन्यासी की संतान होना चाहिए था। गलती से तुम मेरी गोद में आए।"

"यदि तुम उसे काटोगी तो उसका बेटा नहीं रोएगा?" सँपोले ने माँ से प्रश्न किया।

"भले रोए। उससे मेरा क्या बिगड़ेगा? मनुष्य की और हमारी जाति एक थोड़े ही है!"

इतने में सामनेवाली झाड़ी से पत्तों की चरमराहट सुनाई दी। आहट पाते ही साँपिन ने सँपोले से कहा, "मैं अभी पलक मारते आ जाऊँगी। तू अपना खयाल रखना। सतर्क रहना। झाड़-झंखाड़ों की छाया को छोड़कर बाहर मत जाना। समझे?"

पत्तों की चरमर जारी थी। अपने बच्चे को प्यार से सहलाती हुई साँपिन आवाज़ की दिशा में रेंगती हुई चल पड़ी, मानो टेढ़े-मेढ़े रास्ते से समुंदर की ओर बढ़नेवाली नदी हो!

भील चील के घोंसले की खोज में मगन था। चोरी-छिपे साँपिन भील का पीछा कर रही थी। उसने आकाश की ओर ताका। एक चील अपनी पैनी नजरों से धरती की ओर कुछ तलाशती हुई आकाश में तैर रही थी। साँपिन रोमांचित हो उठी। उसके समूचे शरीर पर रोंगटे खड़े हो गए। उसने तुरंत पास की घनी झाड़ी में शरण ली।

थोड़ी देर बाद जब उसने झाड़ी से बाहर झाँककर देखा, तब उसे मालूम हुआ कि चील आसमान को चूमने की ललक लिए ऊपर की ओर बढ़ रही थी। उसने इर्द-गिर्द नजर दौड़ाई। भील का कहीं नामोनिशान नहीं था। गुस्से में फुँफकारती हुई वह भील की तलाश में इधर-उधर घूमने लगी।

उसका बच्चा उसके पीछे दौड़ रहा था, इसका उसे पता नहीं था। भील का लड़का भी अपने बाप का अनुगामी बन गया था। आकाश के आकर्षण से चील के चकुले ने भी कब की छलाँग लगा दी थी। "माँ-बाप के



उपदेशों के बावजूद स्वच्छंद विचरना जीवन-क्रम की एक अभिन्न परंपरा ही रही है।"

भील आसमान की ओर नज़र गड़ाकर खड़ा था। अचानक उसे चील का चकुला नज़र आया। धनुष से तीर छूटा। उसी वक्त साँपिन ने उसे काटा।

दूसरे ही क्षण सँपोले पर चील टूट पड़ी।

शांति का परम उपासक संन्यासी अर्घ्यदान से निवृत्त होकर अपनी पर्णकुटी की ओर लौट रहा था कि दूर से वह दृश्य को देखकर पलभर उसे अपनी साधना-सिद्धि पर प्रसन्नता हो आई। पलभर सारे सजीवों में बंधुता निर्माण करने की अपनी माँग पूरी होने का उसे भ्रम हुआ। चील, साँप और आदमी एक-दूसरे की बगल में सोए थे। साँप को न चील का

डर, न आदमी को साँप का। कितना सुंदर, मंगल दृश्य था वह। "मेरी तपस्या की ही विजय है यह!" आँखें मूँदकर हाथ जोड़ते हुए ईश्वर को संबोधित करते हुए वह बोला। "हे ईश्वर, तुम्हारी लीला अगाध है! धन्य हो तेरी....."

वह आगे बढ़ा और सहसा चौंक उठा। उसके रोंगटे खड़े हो गए। जैसे ही उसने तीनों का शव देखा वह सकपका गया। उसने देखा—एक आदमी, एक चील का चकुला और एक साँप का बच्चा।

उसके हाथ से कमंडल छूट गया। अब आकाश की ओर देखने का उसमें साहस तक नहीं रहा। शर्मिंदा होकर उसने अपनी आँखें धरती में गड़ाईं। उसकी आँखें धीरे-धीरे बरसने लगीं।

— विष्णु सखाराव खांडेकर

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. संन्यासी अर्घ्य देते हुए क्या कामना कर रहा था?
2. सँपोले की माँ नहीं होती? चकुले का यह प्रश्न उसकी किस भावना का परिचायक है?
3. भील अपने बेटे को जंगल में जाने से क्यों रोक रहा था?
4. एक दिन पहले अपने पिता से चकुला लाने की ज़िद करने वाले भील-बालक ने बाद में उसके लिए मना क्यों कर दिया?
5. सँपोले ने अपनी माँ के क्रोध को शांत करने के लिए क्या कहा?

(ख) *लिखित*

1. चील ने शिकार के लिए जाते समय चकुले को क्या-क्या समझाया?
2. "तुम्हें तो जंगल के उस संन्यासी की संतान होना चाहिए था" चील, भील और साँपिन ने अपने-अपने बच्चों से यह बात क्यों कही?
3. संन्यासी की पलभर की प्रसन्नता विषाद में क्यों बदल गई?
4. कहानी के किन अंशों से संन्यासी का अपनी तपस्या पर अहंकार व्यक्त होता है?
5. प्रस्तुत कथा शिशुओं और प्रौढ़ों की सोच के अंतर को उजागर करती है। टिप्पणी कीजिए।
6. कहानी में वर्णित प्राणियों के बच्चे अपने पारंपरिक भोज्य-पदार्थ को छोड़ने के लिए क्यों तैयार थे?
7. इस रूपक कथा में क्या संदेश निहित है?
8. इस कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
9. आप इसके लिए क्या अन्य शीर्षक सुझाएँगे और क्यों?

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित वाक्यों को अनुतान सहित पढ़िए –
   (क) यदि तुम उसे पकड़ोगी तो क्या उसकी माँ नहीं रोएगी?
   (ख) फिर हम कुछ और खा लें तो ......।
   (ग) देखो माँ, धूप तेज़ हो चुकी है। चलो, हम अपने घर चलें।
   (घ) तुम निपट पागल हो बेटे! तुम्हें जंगल के उस संन्यासी की संतान होना चाहिए था। गलती से तुम मेरी गोद में आए।
   (ङ) भले रोए। उससे मेरा क्या बिगड़ेगा? मनुष्य की और हमारी जाति एक थोड़े ही है।
2. *निम्नलिखित शब्दों में से पुनरुक्त और शब्द-युग्म छाँटिए –*
   धीरे-धीरे, झाड़-झंखाड़, टेढ़े-मेढ़े, घट-घट, चोरी-छिपे, धनुष-बाण, रो-रो, कूदता-फाँदता।

3. दिए गए प्रत्ययों में से उपयुक्त प्रत्यय चुनते हुए निम्नलिखित शब्दों के साथ जोड़िए –
(ई, क, मान, पन, आहट)
दुश्मन, संहार, प्रकाश, पागल, चरमराना, संन्यास, उपासना
4. निम्नलिखित वाक्यों को उदाहरण के अनुसार बदलिए –
उदाहरण : मेरी कसम तुम अपने घोंसले से मत निकलना।
⇛ मेरी कसम तुम अपने घोंसले से नहीं निकलोगे।
(क) फिर मेरे लिए वह चकुला मत लाना।
(ख) झाड़-झंखाड़ों की छाया को छोड़ कर बाहर मत जाना।
(ग) तुम मेरी बातों को मत भूलना।
(घ) आज वैसी हरकत मत करना।
(ङ) दुष्ट-डायन की चपेट में मत आना।

योग्यता-विस्तार

ऐसे कुछ प्रसंगों, घटनाओं और कहानियों का संकलन कीजिए जो बालमन की निश्छलता, अबोधता और भोलेपन को व्यक्त करते हैं और उन्हें कक्षा में सुनाइए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

अर्घ्यदान – सूर्य को जल अर्पित करना की क्रिया
संहारक – नाश करने वाला
दयानिधान – दया का घर, कृपालु, ईश्वर
घट – मन, शरीर
दावानल – जंगल की आग
उकाब – बड़ी जाति का गिद्ध, गरुड़
सँपोला – साँप का बच्चा
अनुगामी – अनुकरण करने वाला, पीछे चलने वाला
निवृत्त होना – काम समाप्त करना
बंधुता – भाईचारा

21. प्रेमचंद



(प्रस्तुत पाठ में नागार्जुन ने महान साहित्यकार प्रेमचंद के जीवनवृत्त की भावात्मक प्रस्तुति की है। इस जीवनवृत्त में लेखक ने जहाँ प्रेमचंद के जीवन की विभिन्न घटनाओं और परिस्थितियों का उल्लेख कर उनकी गरीबी और घुटन भरे जीवन की ओर संकेत किया है, वहीं स्वतंत्रता संघर्ष में उनके बेबाक और निर्भीक योगदान को भी रेखांकित किया है। प्रेमचंद ने अपने लेखन के माध्यम से भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों का तीव्र विरोध किया है। केवल 56 वर्ष की आयु में प्रेमचंद हिंदी साहित्य को सैकड़ों कहानियाँ और दर्जनों उपन्यास दे गए। कथा साहित्य में उन्हें अपूर्व ख्याति मिली और हिंदी साहित्य जगत ने उन्हें उपन्यास सम्राट की उपाधि से विभूषित किया।)

गोरी सूरत, घनी काली भौंहें, छोटी-छोटी आँखें, नुकीली नाक, बड़ी-बड़ी और गुछी हुई विरल मूँछों वाला यह मुसकराता चेहरा किसका है? यह चेहरा प्रेमचंद का है। लगता है, अभी हँसने वाले हैं। लगता है, अभी ज़ोरों के कहकहे लगाएँगे।

वाराणसी से छह किलोमीटर दूर लमही में शनिवार, 31 जुलाई, सन 1880 को धनपत राय का जन्म हुआ। यद्यपि माँ-बाप ने नाम रखा था धनपत पर चाचा लाड़-प्यार में कहा करते थे नवाब।

पिता का नाम था अजायब राय। डाकखाने में किरानी थे, इसी से लोग उन्हें मुंशी अजायब लाल कहा करते। माता का नाम था – आनंदी। अक्सर बीमार रहतीं। पिता को दवा-दारू से फ़ुरसत नहीं मिलती थी।

धनपत सात वर्ष का ही था कि माँ चल बसीं। माँ के विछोह ने धनपत के बचपन का सारा रस सोख लिया। कुछ वर्ष बाद मुंशी अजायब लाल ने दूसरी शादी की। अभाव तो पहले से था ही, विमाता का निष्ठुर व्यवहार भी उसमें आ मिला। नई माँ बात-बात पर डाँटती। उसे धनपत में बुराइयाँ-ही-बुराइयाँ दीखतीं।

कदाचित प्रेमचंद अपने उपन्यास 'कर्मभूमि' के पात्र चंद्रकांत के द्वारा ख़ुद अपनी ही व्यथा सुना रहे हैं .... "बचपन वह उम्र है जब इनसान को मुहब्बत की सबसे ज़्यादा ज़रूरत पड़ती है। उस वक्त पौधे को तरी मिल जाए तो ज़िंदगी-भर के लिए उसकी जड़ें मज़बूत हो जाती हैं। मेरी माँ के देहांत के बाद मेरी रूह को खुराक नहीं मिली। वही भूख मेरी ज़िंदगी है।"

और, यही कारण था कि बालक धनपत घर-आँगन से भागकर बाहर खुले मैदान में, अमराई में, खेतों की तरफ़ निकल जाता था। साथियों के साथ गुल्ली-डंडा खेलता था। पेड़ों पर चढ़ता था। आम की केरियाँ चुनता था। मटर की फलियाँ तोड़ता था। हवाई किले बनाता था।

गरीबी, घुटन और रूखेपन से त्राण पाने के लिए बालक धनपत ने इस तरह एक सहज रास्ता निकाल लिया था। रोने-खीझने वाली परिस्थितियों पर कहकहे हावी होने लगे। प्रेमचंद ने बचपन से ही मुसीबतों पर हँसना सीखा था।

पिता का तबादला गोरखपुर हुआ। बच्चे भी साथ गए। गाँव के मदरसे से शहर का स्कूल अच्छा था। धनपत की तबीयत पढ़ने में लग गई। गुल्ली-डंडे का खेल पीछे छूट गया। शहरी नज़ारे आगे सरक आए, किताबें चाटने का चस्का इसी उम्र में लगा। हज़ारों कहानियाँ और सैकड़ों छोटे-मोटे उपन्यास धनपत ने इसी उम्र में पढ़ डाले। यह साहित्य उर्दू का था।

हमारा कहानीकार शायद पैदा हो चुका था। रात को अकेले में ढिबरी की मद्धिम रोशनी में उसने गल्प रचना शुरू कर दी थी। बीसियों पन्ने यों ही लिख जाना और उन्हें फाड़ डालना .... यह सब कितना अच्छा लगता होगा तब धनपत को।

उन्हीं दिनों पिता ने शादी करवा दी। निश्चय ही उसमें सौतेली माँ की भी राय रही होगी। जो लड़की धनपत के लिए चुनी गई थी, वह धनपत को कभी पसंद नहीं आई। पुत्र के पाँवों में 'अष्टधातु' की बेड़ियाँ डालकर मुंशी अजायब लाल ने हमेशा के लिए आँखें मूँद लीं। परिवार पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा।

अपनी इन दिनों की दशा का वर्णन प्रेमचंद ने 'जीवन सागर' में किया है, "पाँव में जूते न थे, देह पर साबुत कपड़े न थे। मँहगाई अलग थी। रुपए में बीस सेर के जौ थे। स्कूल में साढ़े तीन बजे छुट्टी मिलती थी। काशी के क्वीन्स कॉलेज में पढ़ता था। हेडमास्टर ने फ़ीस माफ़ कर दी थी। इम्तहान सिर पर था और मैं एक लड़के को पढ़ाने बाँस फाटक जाता था। जाड़ों के दिन थे। चार बजे पहुँचता था, पढ़ाकर छह बजे छुट्टी पाता। वहाँ से मेरा घर देहात में आठ किलोमीटर पर था। तेज़ चलने पर भी आठ बजे से पहले घर न पहुँच पाता। प्रातःकाल आठ बजे फिर घर से चलना पड़ता था। कभी वक्त पर स्कूल न पहुँचता। रात को खाना खाकर कुप्पी के सामने पढ़ने बैठता और न जाने कब सो जाता। फिर भी हिम्मत बाँधे रहता।"

गरीबी....पिता की मृत्यु....खर्च में बढ़ती....असामान्य परिश्रम....कुप्पी के सामने बैठकर रात की पढ़ाई ....।

जैसे-तैसे द्वितीय श्रेणी में मैट्रिक पास किया। गणित से बेहद घबराते थे। इंटरमीडिएट में दो बार फ़ेल हुए। निराश होकर परीक्षा का विचार ही छोड़ दिया। आगे चलकर दस-बारह वर्ष बाद, जब गणित के विकल्प में दूसरा विषय लेना संभव हो गया तभी धनपत राय ने यह परीक्षा पास की।

हमारे भावी उपन्यास-सम्राट के पास एक फूटी कौड़ी न थी। महाजन ने उधार देने से इनकार कर दिया था। बड़ी विवशता से पुरानी पुस्तकों को लेकर एक पुस्तक-विक्रेता के पास पहुँचे। वहीं एक सौम्य पुरुष से, जो एक छोटे-से स्कूल के प्रधानाध्यापक थे, उनका परिचय हुआ। उन्होंने इनकी कुशाग्रता और लगन से प्रभावित होकर अपने यहाँ सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्त करने का आश्वासन दिया और दूसरे दिन इन्हें दस रुपए मासिक वेतन पर नियुक्त किया।

1919 में बी.ए. भी कर लिया। विषय लिए थे-अंग्रेज़ी, फ़ारसी, इतिहास। वे एम.ए. भी करना चाहते थे, कानून भी पढ़ना चाहते थे। लेकिन, परीक्षाओं की तरफ़ से उदासीन हो गए थे। जब उमंग थी तब गणित ने बाधा पहुँचाई, अब जब वह बाधा दूर हुई, तो जीवन का लक्ष्य ही बदल चुका था।

इनकी पहली शादी चाची (विमाता) और चाची के पिता की राय से रचाई गई थी। लड़की प्रेमचंद से उम्र में बड़ी थी, ढीठ और नासमझ भी थी। पति से भी लड़ती थी और पति की सौतेली माँ से भी।

दस-बारह वर्ष तक, यानी 1905 तक तो धनपतराय ने पहली बीवी का साथ जैसे-तैसे निभाया, किंतु जब उसके साथ एक दिन भी निभाना मुश्किल हो गया तो शिवरानी देवी नाम की एक बालविधवा से शादी करके धनपतराय ने समाज के सामने भारी साहस और आत्मबल का परिचय दिया।

धनपतराय पढ़ाकू तो थे ही, कलम भी चलने लगी। मैट्रिक पास करने से पहले ही उनको लिखने का चस्का लग गया था। पढ़ाई और ट्यूशन आदि से जो वक्त बचता, वह सारा-का-सारा किस्से-कहानियाँ पढ़ने में लगाते। किस्से-कहानियों का जो भी असर दिमाग पर पड़ता, उसे अपनी सहज कल्पनाओं में घोल-घोल कर वे नई कथावस्तु तैयार करने लगे और वह कागज़ पर उतरने भी लगी।

1901-2 में उनके एक-दो उपन्यास निकले। कहानियाँ 1907 में लिखनी शुरू कीं। अंग्रेज़ी में रवींद्रनाथ की कई गल्प रचनाएँ पढ़ी थीं, प्रेमचंद ने उनके उर्दू रूपांतर पत्रिकाओं में छपवाए। पहली कहानी थी 'संसार का सबसे अनमोल रत्न' जो 1907 में कानपुर के उर्दू मासिक 'ज़माना' में प्रकाशित हुई। 'ज़माना' में धनपतराय की अन्य रचनाओं का प्रकाशन 1903-4 से ही शुरू हो गया था। 1904 के अंत तक 'नवाब राय' 'ज़माना' के स्थायी और विशिष्ट लेखक हो चुके थे।

1905 तक आते-आते प्रेमचंद तिलिस्मी, ऐयारी और काल्पनिक कहानियों के चंगुल से छूटकर राष्ट्रीय और क्रांतिकारी भावनाओं की दुनिया में प्रवेश कर चुके थे। 'ज़माना' उस समय की राष्ट्रीय पत्रिका थी। सभी को देश की गुलामी खटकती थी, विदेशी शासन की सुनहरी जंजीरों के गुण गाने वाले गद्दार देश-द्रोहियों के खिलाफ़ सभी के अंदर नफ़रत खौलती थी। शाम को 'ज़माना' के दफ़्तर में घंटों देशभक्तों का अड्डा जमता। प्रेमचंद को राष्ट्रीयता की दीक्षा इसी अड्डे पर मिली थी। एक साधारण कथाकार वहीं 'युगद्रष्टा साहित्यकार' के रूप में ढलने लगा। बड़ी-से-बड़ी बातों को सीधे और संक्षेप में कहना या लिखना प्रेमचंद ने यहीं सीखा।

नई पत्नी के साथ रहने लगे तब से लिखाई का सिलसिला जम गया। 1905 से 1920 के दरम्यान प्रेमचंद ने बहुत कुछ लिखा .... अनेक छोटे-बड़े उपन्यास, सैकड़ों कहानियाँ, पत्र-पत्रिकाओं में निबंध और आलोचनाएँ भी कम नहीं लिखीं। मास्टरी के दिनों में भी लिखते रहे थे। स्कूलों के सब-डिप्टी इंस्पेक्टर थे, अक्सर दौरे पर रहना होता था, फिर भी रोज़ कुछ-न-कुछ लिख लेते थे।

1920 के बाद ज़्यादातर वे हिंदी में ही लिखने लगे। 'माधुरी' (लखनऊ) के संपादक होने पर उनकी प्रतिभा और योग्यता की झलक हिंदी संसार को मिलने लगी। फिर भी 'ज़माना' को प्रेमचंद की मौलिक उर्दू-रचनाएँ लगातार मिलती रहीं।

1930 में प्रेमचंद की कहानियों का एक और संकलन जब्त हुआ – 'समर यात्रा'। प्रकाशित होते ही अंग्रेज़ी सरकार ने इस पुस्तक को आपत्तिजनक घोषित कर दिया। सरस्वती प्रेस से पुस्तक की सारी प्रतियाँ उठा ली गईं।

अब वे अपना निजी पत्र निकालना चाहते थे। पत्र-पत्रिकाएँ संपादित करने की दीक्षा दरअसल प्रेमचंद को कानपुर में ही मिल चुकी थी। सन् 1905 से ही 'ज़माना' और 'आज़ाद' के कालम उनकी कलम के लिए 'खेल का मैदान' बन चुके थे। सन 1921-22 में काशी से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'मर्यादा' का संपादन बड़ी कुशलता से किया था। अब वे मँजे हुए पत्रकार थे। फलतः 1930 में 'हंस' निकला और 1932 में 'जागरण'।

हद दर्जे की ईमानदारी और अपनी ड्यूटी अच्छी तरह निभाने की मुस्तैदी, खुद तकलीफ़ झेलकर दूसरों को सुख पहुँचाने की लगन, सौ-सौ

बंधनों में जकड़ी हुई भारत माता की स्वाधीनता के लिए आतुरता, बाहरी और भीतरी बुराइयों की तरफ़ से लोगों को आगाह रखने का संकल्प, हर तरह के शोषण का विरोध .... अपनी इन खूबियों से प्रेमचंद खूब लोकप्रिय हो उठे।

प्रेमचंद का स्वभाव बहुत ही विनम्र था, किंतु उनमें स्वाभिमान कूट-कूटकर भरा था। दिखावा उन्हें बिलकुल पसंद नहीं था .... कुरता और धोती, 1920 के बाद गांधी टोपी अपना ली थी।

सरकारी नौकरी और स्वाभिमान में संघर्ष चलता ही रहता था। आखिर में जीत हुई स्वाभिमान की। 1920 में सरकारी सेवा से त्यागपत्र दे दिया और गाँव जाकर जम गए। कलम चलाकर 40-50 रुपए की फुटकर मासिक आमदनी होने लगी। बड़े संतोष और धीरज से वे दिन प्रेमचंद ने गुज़ारे।

1921 में काशी के नामी देशभक्त बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने 150 रुपए मासिक पर प्रेमचंद को 'मर्यादा' का संपादक बना लिया। पहले संपादक बाबू संपूर्णानंद असहयोग आंदोलन में गिरफ़्तार होकर जेल पहुँच गए थे। 'मर्यादा' को सँभालने के लिए किसी सुयोग्य संपादक की आवश्यकता थी।

1922 में संपूर्णानंद जी जेल से छूटे तो उन्हें 'मर्यादा' वाला काम वापस मिला। लेकिन बाबू शिवप्रसाद गुप्त प्रेमचंद को छोड़ना नहीं चाहते थे। काशी विद्यापीठ में उन्हें स्कूल विभाग का हेडमास्टर नियुक्त कर दिया।

1930 में प्रेमचंद स्वयं राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़ना चाहते थे। सत्याग्रहियों की कतार में शामिल होकर पुलिस की लाठियों के मुकाबले डटना चाहते थे। किंतु जेल जाने का उनका मनोरथ अधूरा ही रह गया।

पत्नी ने सोचा .... कमज़ोर हैं, अक्सर बीमार रहते हैं। इनको जेल नहीं जाने दूँगी। सो वे आगे बढ़ीं। सत्याग्रही महिलाओं की कतार में शामिल हुईं। गिरफ़्तार होकर अपने जत्थे के साथ जेल पहुँच गईं।

प्रेमचंद मन मसोस कर रह गए। मजबूरी थी, पर तसल्ली थी। "हर परिवार से एक आदमी को जेल जाना ही चाहिए ...." उन दिनों यह भावना ज़ोर पकड़ चुकी थी।

यह दूसरी बात है कि वे कभी गिरफ़्तार नहीं हुए, कभी जेल न गए, मगर प्रेमचंद स्वाधीनता-संग्राम के ऐसे सेनापति थे, जिनकी वाणी ने लाखों सैनिकों के हृदय में जोश भर दिया था। स्वाधीनता के लिए जनता की लड़ाई का समर्थन करते समय प्रेमचंद यह कभी नहीं भूले कि आज़ादी केवल एक व्यक्ति के जीवन को सुखमय नहीं बनाएगी, मुट्ठीभर आदमियों के लिए ऐशो-आराम नहीं लाएगी .... वह 'बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय' होगी।

1923 में 'सरस्वती प्रेस' चालू हुआ। प्रेमचंद की आज़ाद तबीयत को नौकरी भाती नहीं थी। स्वाधीन रहकर लिखने-पढ़ने का धंधा करना चाहते थे। प्रेस खोलते वक्त उनके दिमाग में यही एक बात थी कि अपनी किताबें आप ही छापते रहेंगे। मगर प्रेमचंद अपने प्रेस को वर्षों तक नहीं चला सके, किताबों का प्रकाशन करके कागज़ और छपाई-बँधाई का खर्चा निकालना मुश्किल था।

1930 तक प्रेस की हालत खराब रही। फिर भी वह प्रेमचंद का लहू पी-पीकर किसी तरह चलता रहा। इसमें जो कुछ कसर थी, उसे 'हंस' और 'जागरण' ने पूरा कर दिया। घाटा, घाटा और घाटा! कर्ज़, कर्ज़ और कर्ज़!

बार-बार निश्चय करते थे कि दुबारा नौकरी नहीं करेंगे, अपनी किताबों से गुज़ारे के लायक रकम निकल ही आएगी ··· बार-बार जमकर प्रेस में बैठते थे, बार-बार पुराना कर्ज़ पटाकर नए सिरे से मशीन के पुर्ज़ों में तेल डालते थे ···· काम बढ़ता था, परेशानियाँ बढ़ती थीं, बुढ़ापा भी उसी रफ़्तार से आगे बढ़ता जाता था।

पढ़ने-लिखने का सारा काम रात को करते थे। तंदुरुस्ती बीच-बीच में टूट जाती थी, दवा-दारू के लिए शिवरानी रुपए देतीं, तो वे उस रकम को भी प्रेस में खर्च कर डालते, फिर वैद्यों और हकीमों से सस्ती दवाएँ लेते रहते। आराम बिलकुल नहीं करते थे। पूरी नींद सोते नहीं थे। खाना भी मामूली किस्म का खाते।

1936 के बाद दशा कुछ बदली ज़रूर, मगर प्रेमचंद का परिश्रम और भी बढ़ गया।

उनका जीवन ऐसा दीप था जिसकी लौ मद्धिम नहीं, तेज़ प्रकाश देने को मज़बूर थी। पर उस दीप में कभी पूरा-पूरा तेल नहीं डाला गया। लौ हमेशा बत्ती के रेशे को ही जलाती रही।

उनकी बेचैनी इसीलिए थी कि वे चाहते थे कि जीवन-दीप का प्रकाश दूर-दूर तक फैले, वक्त पर फैले, अच्छी तरह फैले। अपनी सारी किताबें, अपना सारा साहित्य, अपने प्रेस में ही छपवाकर समूचे देश में फैला देना चाहते थे। किसानों, मज़दूरों, युवकों, विद्यार्थियों, स्त्रियों और अछूतों की दर्दनाक ज़िंदगी को आधार बनाकर जो कुछ भी लिखें, सभी कुछ छापकर जनता को सजग-सचेत बना देने का संकल्प प्रेमचंद के अंदर हिलोरें ले रहा था। अधिक-से-अधिक लिखते जाना, अधिक-से-अधिक छापते जाना, अधिक-से-अधिक लोगों को जागरूक बनाते जाना ···· शोषण,

गुलामी, ढोंग, दंभ, स्वार्थ, रूढ़ि, अन्याय, अत्याचार इन सबकी जड़ें खोद डालना और धरती को नई मानवता के लायक बनाना ···· यही प्रेमचंद का उद्देश्य था।

तभी तो हानि-लाभ की भावनाओं से निर्लिप्त रहकर प्रेमचंद अंत तक लिखते रहे।

नींद नहीं आती थी। बीमारी बढ़ गई थी। प्रेस जाना बंद था। फिर भी, आप घर वालों की नज़रें बचाकर उठ जाते और कलम तेज़ी से चल पड़ती ···· इतनी तेज़ी से कि जीवन समाप्त होने से पहले ही सब कुछ लिख देना चाहते थे।

"मैं मज़दूर हूँ, जिस दिन न लिखूँ, उस दिन मुझे रोटी खाने का अधिकार नहीं है ·····" ये शब्द उनके होंठों के केवल आभूषण ही न थे बल्कि सच थे।

फ़िल्मों के द्वारा जनता तक अपने संदेशों को प्रभावशाली ढंग से पहुँचाने और साथ ही अभावों से मुक्ति पाने के लिए वे मुंबई गए। किंतु धनपत को धनपतियों का सहवास और मुंबई का प्रवास रास नहीं आया, वह उनकी अभिलाषाओं की पूर्ति नहीं कर पाया।

फिर वही प्रेस। फिर वही प्रकाशन, फिर वही घिसाई। रातों-रात जागकर प्रेमचंद ने 'गोदान' पूरा किया।

'गोदान' छपकर निकल आया था कि उनकी लेखनी 'मंगलसूत्र' पर तेज़ी से चल रही थी।

मरते-मरते प्रेमचंद इस उपन्यास को पूरा करना चाहते थे। चार ही अध्याय लिख पाए थे। खाना नहीं हजम होता था। खून की कै करने लगे थे। पेट में पानी भर गया था। दूध, बार्ली, फलों का रस तक नहीं पचा पाते

थे। पर इतने पर भी काम करने की ललक पीछा नहीं छोड़ती थी, लिखने की अभिलाषा शांत नहीं हो पाती थी, देश को अपने जीवन, अनुभव और अपने विचारों की अंतिम बूँद तक दे जाने की इच्छा चैन नहीं लेने देती थी।

8 अक्तूबर 1936, रात का पिछला पहर। प्रेमचंद ने हमेशा के लिए अपनी आँखें मूँद लीं। अभी साठ के भी नहीं हुए थे। 56 वर्ष की आयु क्या कोई लंबी आयु थी?

मैक्सिम गोर्की और शरत्‌चंद्र ····· का देहावसान उसी वर्ष हुआ।

– **नागार्जुन**

प्रश्न-अभ्यास

बोध और विचार

(क) मौखिक

1. बचपन में प्रेमचंद घर से भागकर खेतों, बगीचों, मैदानों में चले जाते थे। क्योंकि –
   (क) वे घर की चहारदीवारी में बँधकर बैठना नहीं चाहते थे।
   (ख) वे वहाँ जाकर अपनी कहानियों के लिए कथानक सोचते थे।
   (ग) वे घर पर सौतेली माँ की बातों से परेशान रहते थे।
   (घ) वे खुली हवा में घूमना-फिरना बेहद पसंद करते थे।
2. प्रेमचंद का शिवरानी देवी से विवाह करना साहस और आत्मबल का काम क्यों था?
3. प्रेमचंद ज़माना पत्रिका में किस नाम से लिखा करते थे?
4. प्रेमचंद ने किन-किन पत्रिकाओं का संपादन किया?
5. प्रेमचंद का कौन-सा उपन्यास अधूरा रह गया?

(ख) लिखित

1. प्रेमचंद के बचपन के खट्टे-मीठे अनुभवों का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
2. किन-किन कठिनाइयों के बावजूद प्रेमचंद ने अपनी पढ़ाई जारी रखी?
3. ज़माना पत्रिका से जुड़ने पर प्रेमचंद ने क्या-क्या सीखा?
4. प्रेमचंद अपने किन-किन गुणों के कारण लोकप्रिय हुए?
5. शिवरानी देवी ने प्रेमचंद का साथ बखूबी निभाया। कैसे?
6. प्रेमचंद के मन में किस तरह की 'बेचैनी' बनी रहती थी और क्यों?
7. स्वतंत्रता संग्राम में प्रेमचंद के योगदान का उल्लेख कीजिए।
8. प्रेमचंद की साहित्यिक यात्रा का वर्णन कीजिए।
9. स्पष्ट कीजिए कि प्रेमचंद किस प्रकार हानि-लाभ की भावनाओं से निर्लिप्त रहकर अंत तक लिखते रहे?
10. आशय स्पष्ट कीजिए –
    (क) वही भूख मेरी ज़िंदगी है।
    (ख) पर इस दीप में कभी पूरा-पूरा तेल नहीं डाला गया। लौ हमेशा बत्ती के रेशे को ही जलाती रही।

भाषा-अध्ययन

1. जिस समस्त पद का पहला पद संख्यावाची हो और पूरा पद समूह का बोध कराता हो, उसे द्विगु समास कहते हैं; जैसे – अष्टधातु = आठ धातुओं का योग।
   नीचे लिखे समस्त पदों में से द्विगु समास ढूँढ़कर उनका विग्रह कीजिए –
   चतुर्भुज, आमरण, त्रिभुवन, चौराहा, स्वाधीनता-संग्राम, शताब्दी
2. वाक्य में निहित भाव को स्पष्ट करने तथा कथन पर बल देने के लिए कई बार वाक्य के पदों का निश्चित क्रम में परिवर्तन किया जाता है। यह एक प्रकार का शैलीगत भेद है; जैसे – 'आखिर में जीत हुई स्वाभिमान की।' यहाँ लेखक ने 'स्वाभिमान' पर बल देने के लिए उसका स्थान बदल दिया है। सामान्य कथन होता, 'आखिर में स्वाभिमान की जीत हुई।'

नीचे लिखे वाक्यों को सामान्य कथन में परिवर्तित कीजिए –

(क) आराम बिलकुल नहीं करते थे वे।

(ख) यह चेहरा प्रेमचंद का है।

(ग) वाराणसी से छह किलोमीटर दूर लमही में शनिवार, 31 जुलाई सन 1880 को धनपत राय का जन्म हुआ।

(घ) माँ-बाप ने नाम रखा था धनपत।

(ङ) अभाव तो पहले से था ही, विमाता का निष्ठुर व्यवहार भी उसमें आ मिला।

3. निम्नलिखित वाक्य पढ़िए –

(क) मोहन आजकल स्कूल नहीं जाता।

(ख) तुम वहाँ मत जाओ।

(ग) आप यह काम न कीजिए।

उपर्युक्त तीनों वाक्यों में 'नहीं', 'मत', 'न', निषेधार्थक हैं। किंतु इनका प्रयोग अलग-अलग संदर्भों में होता है। 'नहीं' का प्रयोग विधानवाचक वाक्यों में, 'मत' का प्रयोग आज्ञार्थक वाक्यों में और 'न' का प्रयोग आज्ञार्थक वाक्यों में आदर और विनम्रतासूचक अर्थ में होता है।

'नहीं', 'मत' और 'न' का इसी प्रकार प्रयोग करते हुए दो-दो वाक्य लिखिए।

4. निम्नलिखित मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग कीजिए –

जड़ें खोदना, मुसीबतों का पहाड़ टूटना, हावी होना, हवाई किले बनाना, आँखें मूँदना।

योग्यता-विस्तार

1. इस पाठ के लेखक नागार्जुन ने प्रेमचंद की मुखाकृति का वर्णन किया है। इस वर्णन की तुलना महादेवी वर्मा द्वारा लिखित संस्मरण, 'राजेंद्र बाबू' में राजेंद्र बाबू की मुखाकृति के वर्णन से कीजिए।

2. "प्रेमचंद भारतीय कृषक जीवन के प्रतिनिधि हैं"। उनके जीवन की कुछ घटनाओं और परिस्थितियों तथा उनके द्वारा रचित 'गोदान' उपन्यास और 'पंच परमेश्वर', 'दो बैलों की जोड़ी', 'नमक का दारोगा' आदि कहानियों को आधार मानकर उक्त कथन पर कक्षा में चर्चा कीजिए।

3. प्रेमचंद की तीन-सौ से अधिक कहानियाँ, 'मानसरोवर' के आठ भागों तथा 'गुप्तधन' के दो भागों में प्रकाशित हुई हैं। उनमें से अधिकाधिक कहानियों को पढ़कर हिंदी कथा-साहित्य को प्रेमचंद की देन के संबंध में जानकारी प्राप्त कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

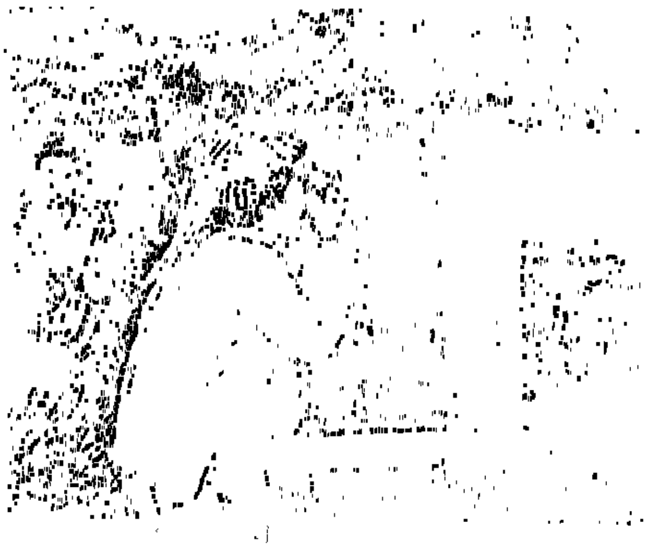
गुछी हुई	–	मिली हुई, जिसके बाल आपस में चिपके हुए से हों
विरल	-	जो घना न हो
किरानी	–	क्लर्क
विमाता	–	सौतेली माँ
अमराई	–	आमों का बगीचा
केरी	–	कच्चा, छोटा आम, अमिया
त्राण	–	छुटकारा
हवाई किले बनाना	–	कल्पनाओं में घूमना, खयाली पुलाव पकाना
तबादला	–	स्थानांतरण, ट्रांसफ़र
ढिबरी	–	टीन/शीशा, मिट्टी आदि की बनी मिट्टी के तेल से जलने वाली और दीपक की तरह काम आने वाली डिबिया, ढिबरी
गल्प	–	कथा, छोटी कहानी
कुप्पी	–	ढिबरी जैसा दीपक
विकल्प	–	के बदले, स्थानापन्न
फूटी कौड़ी	–	खोटा सिक्का
कुशाग्रता	–	तेज़ बुद्धि
युगद्रष्टा	–	अपने समय की वास्तविकताओं का पूर्वानुमान कर लेने वाला
आश्वासन	–	भरोसा
उदासीन	–	तटस्थ, रुचि-अरुचि से अलग
तिलिस्मी	–	जादुई
ऐयारी	–	वेश या रूप बदलकर अनोखे काम करने वाले, (ऐयार) के कारनामे

दौरे पर रहना	–	सरकारी काम से बाहर जाना
मनोरथ	–	इच्छा
बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय	–	अधिकाधिक लोगों के सुख और हित के लिए
लहू पी-पीकर	–	अत्यधिक कष्ट सहकर
दर्दनाक	–	दर्द से भरा, वेदनापूर्ण
दंभ	–	अहंकार, घमंड

22. प्रियतम

('निराला' की प्रस्तुत कविता एक बोध-कथा का आभास कराती है। नारद विष्णु से उनके सबसे प्रिय भक्त का नाम पूछते हैं और विष्णु एक किसान का नाम बताकर नारद का मोह भंग कर देते हैं। विष्णु बताते हैं कि अपने सांसारिक दायित्वों को भली भाँति पूरा करते हुए जो यथा-समय मेरा भी स्मरण कर लेता है, वही मेरा सबसे प्रिय भक्त है, कर्म-शून्य रहकर केवल मेरा नाम रटने वाला नहीं।)

एक दिन विष्णुजी के पास गए नारद जी
पूछा, "मृत्युलोक में वह कौन है पुण्यश्लोक
भक्त तुम्हारा प्रधान?"
विष्णु जी ने कहा, "एक सज्जन किसान है
प्राणों से प्रियतम।"
"उसकी परीक्षा लूँगा", हँसे विष्णु सुनकर यह,
कहा कि, "ले सकते हो।"
नारद जी चल दिए
पहुँचे भक्त के यहाँ
देखा, हल जोत कर आया वह दोपहर को,
दरवाज़े पहुँचकर राम जी का नाम लिया,
स्नान-भोजन करके
फिर चला गया काम पर।



शाम को आया दरवाजे पर फिर नाम लिया,
प्रातः काल चलते समय
एक बार फिर उसने
मधुर नाम स्मरण किया
"बस केवल तीन बार।"
नारद चकरा गए –
किंतु भगवान को किसान ही यह याद आया है?
गए विष्णुलोक
बोले भगवान से
"देखा किसान को
दिन भर में तीन बार
नाम उसने लिया है।"

बोले विष्णु, "नारद जी,
आवश्यक दूसरा
एक काम आया है
तुम्हें छोड़कर कोई
और नहीं कर सकता।
साधारण विषय यह।
बाद को विवाद होगा,
तब तक यह आवश्यक कार्य पूरा कीजिए
तेल-पूर्ण पात्र यह
लेकर प्रदक्षिणा कर आइए भूमंडल की
ध्यान रहे सविशेष
एक बूँद भी इससे
तेल न गिरने पाए।"
लेकर चले नारद जी
आज्ञा पर धृत-लक्ष्य
एक बूँद तेल उस पात्र से गिरे नहीं।
योगिराज जल्द ही
विश्व-पर्यटन करके
लौटे बैकुंठ को
तेल एक बूँद भी उस पात्र से गिरा नहीं
उल्लास मन में भरा था
यह सोचकर तेल का रहस्य एक
अवगत होगा नया।



नारद को देखकर विष्णु भगवान ने
बैठाया स्नेह से
कहा, "यह उत्तर तुम्हारा यहीं आ गया
बतलाओ, पात्र लेकर जाते समय कितनी बार
नाम इष्ट का लिया?"
"एक बार भी नहीं।"
शंकित हृदय से कहा नारद ने विष्णु से
"काम तुम्हारा ही था
ध्यान उसी से लगा रहा
नाम फिर क्या लेता और?"

विष्णु ने कहा, "नारद
उस किसान का भी काम
मेरा दिया हुआ है
उत्तरदायित्व कई लादे हैं, एक साथ
सबको निभाता और
काम करता हुआ
नाम भी वह लेता है
इसी से है प्रियतम।"
नारद लज्जित हुए
कहा, "यह सत्य है।"

– सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

प्रश्न-अभ्यास

बोध और सराहना

(क) मौखिक

1. किसान ईश्वर का प्रियतम भक्त था क्योंकि वह –
   (क) सदा ईश्वर का नाम लेता रहता था।
   (ख) नित्य तीन बार भगवान का नाम लेता था।
   (ग) अपने कामकाज में व्यस्त रहकर भी ईश्वर को याद कर लेता था।
   (घ) भगवान विष्णु किसान को बहुत मानते थे।

2. नारद ने किसान की परीक्षा लेने का निर्णय क्यों लिया?
3. नारद क्या देखकर चकरा गए?
4. विश्व पर्यटन से लौटे नारद से विष्णु ने क्या पूछा?

(ख) लिखित

1. विष्णु ने नारद जी को कैसा काम सौंप दिया था? क्यों?
2. विश्व पर्यटन से लौटे नारद के मन में उल्लास क्यों भरा था?
3. पर्यटन करते हुए भगवान का नाम न ले पाने का कारण नारद ने क्या बताया? आप उससे कहाँ तक सहमत हैं?
4. कविता में किसान की भक्ति को नारद से भी श्रेष्ठ क्यों दिखाया गया है?

योग्यता-विस्तार

1. नारद कौन थे? नारद से संबंधित कोई रोचक कथा कक्षा में सुनाइए।
2. 'श्रम की महत्ता' पर एक अनुच्छेद लिखिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

मृत्युलोक	-	पृथ्वी, यह संसार जहाँ सभी जीव मृत्यु को प्राप्त होते हैं
पुण्यश्लोक	-	यशस्वी
बैकुंठ	-	विष्णुलोक, विष्णु का निवास-स्थान
धृत-लक्ष्य	-	लक्ष्य पर स्थिर, एकाग्र
इष्ट	-	प्रिय, आराध्य
शंकित हृदय	-	संदेह से भरा मन
अवगत होना	-	ज्ञात होना, विदित होना
सविशेष	-	विशेष रूप से, खास

शब्द-कोश

इस शब्द-कोश से आपको इस पुस्तक के पाठों के कठिन शब्दों के अर्थ समझने में सहायता मिलेगी। नीचे बाईं ओर कठिन शब्द तथा दाईं ओर उसका अर्थ दिया गया है। अनेक स्थलों पर शब्द के आगे कोष्ठक में संयुक्त शब्दों को अलग-अलग करके दिखाया गया है ताकि आप शब्द-निर्माण की विधि भी समझ सकें।

कहीं-कहीं शब्दों के अनेक पर्याय भी दिए गए हैं। इससे आप प्रसंग के अनुसार अनुकूल शब्द का चयन करना सीख सकेंगे। यह शब्द-कोश आपको शब्दों के न केवल सही अर्थ जानने में मदद करेगा अपितु शब्दों की सही वर्तनी भी सिखाएगा।

शब्द का अर्थ देने से पहले मूल शब्द के बाद कोष्ठक में एक संकेताक्षर दिया गया है। व्याकरण की दृष्टि से कोई शब्द संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि शब्दभेदों में से किस भेद का है, यह सूचना आपको इस संकेताक्षर से मिलेगी। यहाँ जो संकेताक्षर अथवा संक्षिप्त रूप प्रयुक्त हुए हैं, वे इस प्रकार हैं –

पु.	–	पुल्लिंग	क्रि.	–	क्रिया
स्त्री.	–	स्त्रीलिंग	क्रि.वि.	–	क्रिया विशेषण
सर्व.	–	सर्वनाम	अ.	–	अव्यय
वि.	–	विशेषण	मु.	–	मुहावरा

इस शब्द-कोश में अपेक्षित शब्द का अर्थ ढूँढ़ना शुरू करने से पहले यह उचित होगा कि शब्द-कोश देखने की सही विधि आप जान लें। इसके लिए नीचे लिखे बिंदुओं को ध्यान में रखना होगा –

1. जिस शब्द के बारे में जानकारी प्राप्त करनी है, उसके प्रारंभ का वर्ण देखा जाता है। उसके आधार पर ही शब्द ढूँढ़ा जाता है।
2. शब्द-कोश में शब्दों को इस वर्ण-अनुक्रम में दिया जाता है – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ के पश्चात् क से ह तक के सही वर्ण क्रम के अनुसार।
3. 'क्ष', 'त्र', 'ज्ञ' को 'ह' के बाद नहीं ढूँढ़ना चाहिए। 'क्ष', 'क्' और 'ष' का संयुक्त रूप है। अत: इससे शुरू होने वाले शब्दों को 'क' से शुरू होने वाले शब्दों के समाप्त होने पर ढूँढ़ना चाहिए। 'क्व' से प्रारंभ होने वाले शब्दों के समाप्त होने पर 'क्ष' से प्रारंभ होने वाले शब्द देखे जा सकते हैं।
4. 'त्र', 'त्' और 'र' का संयुक्त रूप है। अत: 'त्र' से शुरू होने वाले शब्द 'त' से शुरू होने वाले शब्दों के बाद ही ढूँढ़े जाने चाहिए। 'त्य' से संबंधित शब्द जब समाप्त हो जाते हैं तब 'त्र' से आरंभ होने वाले शब्द देखे जा सकते हैं।
5. 'ज्ञ', 'ज्' और 'ञ' का संयुक्त रूप है। अत: 'ज्ञ' से शुरू होने वाले शब्दों को 'ज' से शुरू होने वाले शब्दों के बाद ही ढूँढ़ना चाहिए। 'ज' से संयुक्त होकर बनने वाला पहला वर्ण 'ज्ञ' ही है। अत: 'जौहरी' के बाद ही 'ज्ञ' से बनने वाले शब्द देखे जा सकते हैं। 'ज्ञ' के बाद 'ज्य' से बनने वाले शब्द आते हैं।

6. सभी वर्ण अनुस्वार एवं चंद्रबिंदु से ही शुरू होते हैं। उसके बाद वर्णक्रम शुरू होता है। इसलिए 'अंक', 'अँकवार', 'अंकुश', 'अंधा', 'अँधेरा', 'अंश' आदि के बाद ही 'अकड़', 'अकाल' आदि शब्द आते हैं। अनुस्वार और अनुनासिक की प्राथमिकता इसी क्रम में सभी वर्णों के साथ स्वीकृत है।
7. अनुस्वार और अनुनासिक युक्त वर्ण के पश्चात हर वर्ण में मात्राओं का वही क्रम रहता है जो स्वरों का होता है। (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ) मात्राओं से युक्त वर्णों से समाप्त हो जाने पर ही संयुक्त वर्ण शुरू होगा।

सामान्य शब्द-कोशों में मुहावरों को उनके पहले शब्द के अंतर्गत दिया जाता है। विद्यार्थियों की दृष्टि से हमने यहाँ मुहावरों को स्वतंत्र इकाई मान कर अलग पद के रूप में दिया है ताकि शब्द-कोश देखना विद्यार्थियों के लिए जटिल न हो जाए।

अ

अंक भरना	:	(क्रि.),	आलिंगन में लेना, गले लगाना।
अंचल	:	(पु.),	किनारा, तट
अंतःसलिला	:	(स्त्री.),	धरती के अंदर ही अंदर बहने वाला
अंध-भक्ति	:	(स्त्री.),	तर्कहीन आस्था
अग-जग	:	(पु.),	जड़ चेतनयुक्त संसार
अग्रसर	:	(क्रि.),	आगे बढ़ना
अचल	:	(वि.),	निष्क्रिय
अजनबी	:	(पु.),	अपरिचित
अजातशत्रु	:	(पु.),	जिसका कोई शत्रु न हो
अतल	:	(पु.),	बहुत गहरा
अनादि-अनंत	:	(वि.),	जिसका आदि या अंत न हो
अनुगामी	:	(वि.),	अनुकरण करने वाला, पीछे चलने वाला
अनुपात	:	(पु.),	सापेक्षित संबंध, एक की तुलना में दूसरे का मान
अनुभूति	:	(स्त्री.),	महसूस करना
अनुरक्ति	:	(स्त्री.),	अनुराग, प्रेम
अनुराग	:	(पु.),	प्रीति, अनुरक्ति
अनुरूप	:	(वि.),	समान, सदृश्य
अनुसंधान	:	(पु.),	खोज
अनूप	:	(वि.),	जिसकी उपमा न दी जा सके
अपराजेय	:	(वि.),	जिसे पराजित न किया जा सके, अविजित
अपरिपक्व	:	(वि.),	जो पका न हो, अविकसित
अपरिमार्जित	:	(वि.),	जो साफ़-सुथरा न हो, अस्वच्छ
अपवाद	:	(पु.),	सामान्य नियम से भिन्न

अभिलेखागार	:	(पु.),	जहाँ पुराने सरकारी दस्तावेज सुरक्षित रखे जाते हैं
अभिशप्त	:	(वि.),	शाप से ग्रस्त
अभिशाप	:	(पु.),	बड़ा शाप
अमराई	:	(स्त्री.),	आमों का बगीचा
अमानवीय	:	(वि.),	जो मनुष्यों में न पाया जाता हो
अमित	:	(वि.),	असीम
अमोघ वचन	:	(पु.),	निष्फल न होने वाले वचन
अयानी	:	(पु.),	अज्ञानी
अरुण	:	(वि.),	लाल
अरुणाभ	:	(वि.),	लाल आभा से युक्त
अर्घ्यदान	:	(पु.),	सूर्य को जल अर्पित करने की क्रिया
अर्थहीन	:	(वि.),	बेकार की, निरर्थक
अलस	:	(पु.),	आलस
अवगत	:	(वि.),	ज्ञात, विदित
अवांछित	:	(वि.),	अनचाही
अविरल	:	(वि.),	निरंतर, लगातार
अल्पव्यस्क	:	(पु.),	कम उम्र का, छोटा
अश्मक	:	(पु.),	यह जनपद महाराष्ट्र में गोदावरी तट के पास था और इसकी राजधानी प्रतिष्ठान (पैठण) में थी
अश्लील	:	(वि.),	फूहड़, भद्दा, बेढंगा
अस्ताचल	:	(पु.),	पश्चिम दिशा, पश्चिम का कल्पित पर्वत जिसके पीछे सूर्य का अस्त होना माना जाता है
अस्मिता	:	(स्त्री.),	अस्तित्व की पहचान, अपनी पहचान

आ

आकंठ	:	(क्रि.वि.),	पूर्ण रूप से, गले तक
आक्रोश	:	(पु.),	क्रोध

आखेट	:	(पु.),	शिकार
आघात	:	(पु.),	चोट
आतप	:	(पु.),	धूप
आतिथेय	:	(वि.),	मेजबान, अतिथि का स्वागत करने वाला
आध्यात्मिक	:	(वि.),	आत्मा की उन्नति से संबंधित
आभामंडित	:	(वि.),	तेज से भरा हुआ
आर्थोपैडिक	:	(पु.),	हड्डियों से संबंधित
आलोड़ित	:	(वि.),	उथल-पुथल युक्त, हिलोरें लेता हुआ
आविर्भाव	:	(पु.),	महापुरुष का जन्म, उत्पत्ति
आश्वस्त	:	(वि.),	निश्चित
आश्वासन	:	(पु.),	भरोसा
आसन्न	:	(वि.),	निकट का, आस-पास
आस्था	:	(स्त्री.),	विश्वास, निष्ठा
आहुति	:	(स्त्री.),	यज्ञ या हवन में अग्नि को समर्पित की जाने वाली सामग्री

इ

इतिवृत्त	:	(पु.),	वृत्तांत, विवरण
इष्ट	:	(वि.),	प्रिय, आराध्य

उ

उकाव	:	(पु.),	बड़ी जाति का गिद्ध, गरुड़
उजालदान	:	(पु.),	रोशनदान, झरोखा
उत्कट	:	(वि.),	तीव्र, प्रबल
उत्फुल्ल	:	(वि.),	प्रसन्न
उदर-दरी से	:	(वि.),	गर्भ से
उदयाचल	:	(स्त्री.),	पूर्व दिशा, पूर्व दिशा का कल्पित पर्वत। माना जाता है कि सूर्य उसी से उदय होता है

उदासीन	:	(वि.),	तटस्थ, रुचि-अरुचि से अलग
उद्गम	:	(पु.),	नदी या झरने के निकलने का स्थान
उद्गार	:	(पु.),	भावपूर्ण वचन
उद्यान	:	(पु.),	बाग-बगीचे
उन्मुक्त	:	(वि.),	खुला, बंधनरहित
उपग्रह	:	(पु.),	आकाशीय पिंड जो ग्रहों के चारों ओर घूमता है
उपचार	:	(पु.),	इलाज
उपयुक्तता	:	(स्त्री.),	अनुकूलता, औचित्य, ठीक होना
उपवास	:	(स्त्री.),	व्रत
उल्लास	:	(पु.),	खुशी, उमंग

ए

ऐकासन	:	(पु.),	बैठने की एक ही मुद्रा
ऐयारी	:	(पु.),	वेश या रूप बदलकर अनोखे काम करने वाले, (ऐयार) के कारनामे
औध	:	(स्त्री.),	अवध, अयोध्या

क

कंठ अवरुद्ध होना	:	(मु.),	गला रुँधना, भावावेग से बोल न पाना
कंठगत	:	(वि.),	गले में अटके हुए
कंदरा	:	(स्त्री.),	गुफा
कनीं	:	(स्त्री.),	छोटे कण
करतूती	:	(स्त्री.),	कर्म
कर्म निरत	:	(वि.),	काम में लगे हुए
कर्मनिष्ठा	:	(स्त्री.),	कर्म के प्रति समर्पण
कागर	:	(पु.),	पंख
काजु अकाजु	:	(पु.),	कर्तव्य-अकर्तव्य, उचित-अनुचित

कातर	:	(वि.),	डरा हुआ
कातर मुद्रा	:	(स्त्री.),	डरा हुआ रूप
काया	:	(स्त्री.),	शरीर
किंकर्तव्यविमूढ़	:	(वि.),	दुविधा में पड़ना
किमि के	:	(पु.),	कैसे
किरानी	:	(पु.),	क्लर्क
कीर	:	(पु.),	तोता
कीर्ति	:	(स्त्री.),	यश
कुंठित	:	(वि.),	निष्प्रभावी, कुंद होना, मंद
कुंडलियाँ	:	(स्त्री.),	छंद विशेष जिसमें पहली दो पंक्तियाँ दोहे की होती हैं और अंतिम चार रोला की। दोहे के अंतिम चरण को रोला के प्रथम चरण के रूप में दोहराया जाता है और पहला शब्द ही छंद का अंतिम शब्द होता है
कुपित	:	(वि.),	नाराज़
कुप्पी	:	(पु.),	ढिबरी जैसा दीपक
कुशाग्रता	:	(स्त्री.),	तेज़ बुद्धि
कृपणता	:	(स्त्री.),	कंजूसी
केतिक	:	(वि.),	कितना
केशवदास	:	(पु.),	हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि, वह अपने सफ़ेद बाल के कारण एक सुंदर युवती के द्वारा 'बाबा' कहे जाने पर दुःखी हो गए थे
केरी	:	(पु.),	कच्चा, छोटा आम, अमिया
क्षत-विक्षत	:	(वि.),	बुरी तरह घायल
क्षितिज	:	(स्त्री.),	जहाँ पृथ्वी और आकाश मिलते दिखाई दें, दिशा की छोर

ख

खता	:	(स्त्री.),	कष्ट, दोष
खरा उतरना	:	(पु.),	सफल सिद्ध होना
खिन्न	:	(वि.),	उदास
खिन्नता	:	(स्त्री.),	दुःख

ग

गद्यात्मक	:	(वि.),	सादा, सामान्य
गरिमा	:	(स्त्री.),	गौरव, महत्त्व
गल्प	:	(स्त्री.),	कथा, छोटी कहानी
गवाक्ष	:	(पु.),	सूराख, झरोखा
गहवारा	:	(पु.),	पालना, विकास स्थली, वह स्थान जहाँ किसी को पाल-पोस कर बड़ा किया गया हो
गह्वर	:	(स्त्री.),	गुफ़ा, गहराई
गागर में सागर	:	(मु.),	थोड़े में बहुत कुछ कहना और लिखना
गुंछी हुई	:	(वि.),	मिली हुई, जिसके बाल आपस में चिपके हुए से हों
गुमराह	:	(वि.),	राह से भटका हुआ

घ

घट	:	(पु.),	मन, शरीर

च

चपलता	:	(स्त्री.),	चंचलता
चरू	:	(स्त्री.),	गर्भवती भेड़ का पेट चीर कर निकाले गए बच्चे की खाल

च्वै	:	(क्रि.),	टपकना, चू पड़ना, बहना
चस्का	:	(पु.),	लत, आदत
चिंदिया	:	(स्त्री.),	छोटे-छोटे टुकड़े
चिर महान	:	(वि.),	सदा महान रहने वाला (सत्य, शिव और सुंदर)
चिर मुँदे	:	(वि.),	बहुत दिनों से बंद
चुनिंदा	:	(वि.),	चुनी हुई, पसंद की
चेहरे पर हवाइयाँ उड़ना	:	(मु.),	डर जाना, घबरा जाना

ज

जड़ खोदना	:	(मु.),	नाश करना
जनश्रुतियाँ	:	(स्त्री.),	लोक में प्रचलित बातें, किंवदंतियाँ
जवाब दे देना	:	(क्रि.),	खराब हो जाना
जिजीविषा	:	(स्त्री.),	जीने की इच्छा
जियत	:	(क्रि.वि.),	जीते हुए
जिरह-बख्तर	:	(पु.),	कवच
जीवन संग्राम	:	(पु.),	जीवन रूपी युद्ध
जुड़ाना	:	(क्रि.वि.),	तृप्त होना
जोगु	:	(वि.),	योग्य
ज्योतिष	:	(पु.),	ग्रह-नक्षत्रों की गति-स्थिति का अध्ययन करने वाले शास्त्र को प्राचीन भारत में ज्योतिष या गणित-ज्योतिष कहते थे। अब इस शास्त्र को हम खगोल विज्ञान कहते हैं। जो लोग ग्रह-नक्षत्रों के शुभाशुभ फल बताने का कार्य करते हैं उन्हें फलित-ज्योतिषी कहा जाता है
ज्वलंत	:	(वि.),	चमकदार, प्रकाशमान

झ

झकझोरना	:	(क्रि.),	विचलित कर देना, हिला देना
झूलना पुल	:	(पु.),	रस्सियों का बना झूले-सा पुल

ट

टीकाकार	:	(पु.),	मूल ग्रंथ में प्रस्तुत विषयों की विस्तृत व्याख्या करने वाले को टीकाकार कहते हैं
टोहना	:	(क्रि.),	खोजना, पता लगाना
ठाकुर मन के	:	(मु.),	मन के मालिक

ढ

ढाढ़स	:	(पु.),	दिलासा, सांत्वना
ढाढ़स बँधाना	:	(मु.),	हिम्मत बढ़ाना
ढिबरी	:	(स्त्री.),	टीन, शीशा, मिट्टी आदि की बनी मिट्टी के तेल से जलने वाली और दीपक की तरह काम आने वाली डिबिया, ढिबरी

त

तबादला	:	(पु.),	स्थानांतरण, ट्रांसफ़र
तमन्ना	:	(स्त्री.),	इच्छा, कामना
तरुण	:	(पु.),	नवयुवक
ताकना	:	(क्रि.),	गौर से देखना
ताड़पत्र	:	(पु.),	पुराने जमाने में हमारे देश में पुस्तकें खास तौर से तैयार किए गए ताड़ के पत्रों (ताड़पत्र) या भूर्ज नामक पेड़ की छाल के पत्रों (भोजपत्रों) पर लिखी जाती थीं

तादाद	:	(स्त्री.), संख्या
तिय	:	(स्त्री.), पत्नी
तिलिस्मी	:	(वि.), जादुई

त्र

त्राण	:	(पु.), छुटकारा

द

दंभ	:	(पु.), अहंकार, घमंड
दकियानूसी	:	(वि.), पुराने विचारों से चिपका रहनेवाला, पुरातनपंथी
दक्षिणापथ	:	(पु.), विंध्य पर्वत के दक्षिण में स्थित भू-भाग का प्राचीन नाम। विंध्य पर्वत के उत्तर में स्थित भू-भाग को उत्तरापथ कहते हैं
दमनचक्र	:	(पु.), दमन का चक्र, विरोध को बलपूर्वक दबाना
दयानिधान	:	(पु.), दया का घर, कृपालु, ईश्वर
दर्दनाक	:	(वि.), दर्द से भरा, वेदनापूर्ण
दशगुणोत्तर	:	(वि.), क्रमशः दस गुना अधिक
दहशत	:	(स्त्री.), डर, भय
दावानल	:	(स्त्री.), जंगल की आग
दिगंत	:	(पु.), क्षितिज, दिशा का छोर
दिशि-दिशि	:	(स्त्री.), दिशा-दिशा में
दीक्षा	:	(स्त्री.), उपदेश, नसीहत
देवांगना	:	(स्त्री.), देवी, अप्सरा
दोषोद्घाटन	:	(स्त्री.), बुराइयाँ बताना, कमियों को प्रकट करना
दौरे पर रहना	:	(मु.), सरकारी काम से बाहर जाना
दृग	:	(स्त्री.), नेत्र, आँख

ध

धर्मभीरु	:	(पु.),	धर्म से डरनेवाला
धृत-लक्ष्य	:	(वि.),	लक्ष्य पर स्थिर, एकाग्र

न

नज़ारा	:	(पु.),	दृश्य
नतमस्तक	:	(वि.),	सिर झुकाए
नव विहान	:	(पु.),	नया सवेरा
नालंदा-विश्वविद्यालय	:	(पु.),	बिहार प्रांत में स्थित नालंदा विश्वविद्यालय (विद्यापीठ) की स्थापना ईसा की पाँचवीं सदी में हुई थी और करीब 1300 ई. तक वह एशिया के एक महान विद्याकेंद्र के रूप में प्रसिद्ध रहा
निकृष्ट	:	(वि.),	बुरा, नीच
नितांत तुच्छ	:	(वि.),	अत्यंत निम्न श्रेणी का, न के बराबर
निदान	:	(पु.),	आखिर
नियंत्रण	:	(पु.),	प्रतिबंध, रोक
नियति	:	(स्त्री.),	भाग्य
निरन्न	:	(वि.),	बिना अन्न का
निराकरण	:	(पु.),	दूर करना, दूर हटाना, समाधान करना
निरीह	:	(वि.),	असहाय, बेचारा
निर्झर	:	(पु.),	झरना
निर्लिप्त	:	(वि.),	तटस्थ, अलग रहना
निशा	:	(स्त्री.),	रात्रि
निष्कलंक	:	(वि.),	बेदाग, निर्दोष, साफ़-सुथरा
निष्ठा	:	(स्त्री.),	दृढ़ता, निश्चय

नूर मंजिल	:	(स्त्री.),	लखनऊ में स्थित मानसिक रोगियों का अस्पताल
नृपचीर	:	(पु.),	राजसी वस्त्र

प

पंच महाभूत	:	(पु.),	सृष्टि के निर्माण-कारक पाँच तत्त्व-पृथ्वी, ज़ल, अग्नि, आकाश और वायु
पक्षाघात	:	(पु.),	लकवा मारने का रोग
पटुता	:	(स्त्री.),	निपुणता
पट्टू	:	(पु.),	एक प्रकार का मोटा ऊनी कपड़ा
पड़ताल	:	(स्त्री.),	छानबीन, जाँच
पथ-प्रदर्शक	:	(पु.),	राह दिखाने वाला
पबि	:	(पु.),	वज्र
परख	:	(स्त्री.),	परीक्षा
परतीती	:	(स्त्री.),	विश्वास, प्रतीति
परस्परावलंबी	:	(पु.),	एक दूसरे पर निर्भर, परस्पर अवलंबी
परिणत होना	:	(वि.),	बदल जाना, रूपांतरित होना
परिधान	:	(पु.),	वस्त्र
परिवेश	:	(पु.),	वातावरण
परीक्षित	:	(वि.),	कसौटी पर आजमाए हुए
पर्दाफ़ाश करना	:	(मु.),	भेद खोलना
पर्व	:	(पु.),	त्योहार, महत्त्वपूर्ण अवसर, उत्सव
पलायन	:	(पु.),	भागने की क्रिया या भाव
पल्ला पकड़ना	:	(मु.),	सहारा लेना
पारायण	:	(पु.),	व्रत की समाप्ति
पाश	:	(पु.),	रस्सी से बनाया गया घेरा, बंधन
पाषाण	:	(पु.),	पत्थर
पाहनहू	:	(पु.),	पत्थर से
पाहुन	:	(पु.),	मेहमान, अभ्यागत

पुण्यश्लोक : (वि.), यशस्वी

पुरावशेष : (पु.), पुराने अवशेष, बचे हुए

पुरुषार्थी : (वि.), परिश्रमी

पूर्णाहुति : (स्त्री.), हवन कर्म की अंतिम आहुति

प्रज्वलित : (वि.), प्रकाशित

प्रतिकृति : (स्त्री.), नकल, चित्र

प्रतिपादन : (पु.), स्थापना

प्रतिभा : (स्त्री.), मौलिकता, सूझ-बूझ, असाधारण बुद्धि

प्रतिष्ठा : (स्त्री.), सम्मान

प्रतिष्ठित : (वि.), स्थापित

प्रपात : (पु.), झरना

प्रभूत : (वि.), अधिक मात्रा में, प्रचुर

प्रयोजन : (पु.), उद्देश्य

प्रलय : (स्त्री.), जगत का विनाश

प्रलोभन : (पु.), लालच

प्रवाल : (पु.), मूँगा, रत्न

प्रसाधित करना : (वि.), सजाना-सँवारना

प्रस्फुटित : (वि.), खिला हुआ

प्रहार : (पु.), चोट

प्राप्य : (वि.), पाने योग्य, जो मिलना चाहिए

प्रायश्चित : (पु.), बुरे काम के फल से बचने के लिए किया जाने वाला कार्य

प्रेम प्रभा : (स्त्री.), प्रेम के प्रकाश को फैलाकर

फ

फूटी कौड़ी : (स्त्री.), खोटा सिक्का

ब

बंधुता	:	(स्त्री.),	भाईचारा
बटाउ	:	(पु.),	राहगीर, पथिक
बटोही	:	(पु.),	पथिक, मुसाफ़िर
बदहवास	:	(वि.),	घबराया हुआ
बनिता	:	(स्त्री.),	स्त्री
बर्बरता	:	(स्त्री.),	जंगलीपन, उजड्डपन
बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय	:	(मु.),	अधिकाधिक लोगों के सुख और हित के लिए
बाजु-ए-कातिल	:	(स्त्री.),	हत्यारे की भुजा
बावली	:	(स्त्री.),	पगली
बित्ते-भर की	:	(स्त्री.),	छोटे कद की
बिथकीं	:	(स्त्री.),	चकित हुईं
बिलोकहु	:	(क्रि.),	देखो
बिसारि दे	:	(क्रि.वि.),	भुला दे, भूल जा
बेधना	:	(क्रि.),	बिद्ध करना
बेमानी	:	(स्त्री.),	बिना मतलब का
बेहिचक	:	(वि.),	निस्संकोच
बैकुंठ	:	(पु.),	विष्णुलोक, विष्णु का निवास-स्थान
ब्रह्मगुप्त	:	(पु.),	ईसा की सातवीं सदी के गणितज्ञ-ज्योतिषी। इनके दो प्रसिद्ध ग्रंथ हैं – ब्रह्मस्फुट-सिद्धांत और खंडखाद्यक

भ

भं	:	(पु.),	नक्षत्र, तारागण
भीरु	:	(वि.),	डरपोक, कायर
भू-भौतिकीय	:	(पु.),	पृथ्वी की भौतिक संरचना से संबंधित

म

मँजे हुए	:	(वि.),	अनुभवी
मँझधार	:	(स्त्री.),	धारा के बीचोंबीच
मखौल	:	(स्त्री.),	मज़ाक
मधुकर	:	(पु.),	भँवरा
मनीषी	:	(पु.),	विचारक, विद्वान
मनोरथ	:	(स्त्री.),	इच्छा
मरघट	:	(पु.),	श्मशान, मुर्दा जलाने की जगह
मही	:	(स्त्री.),	पृथ्वी, धरती
माहौल	:	(पु.),	वातावरण
मुकुल	:	(स्त्री.),	कली
मूल्य	:	(पु.),	(जीवन मूल्य) आदर्श
मृत्युलोक	:	(पु.),	पृथ्वी, यह संसार जहाँ सभी जीव मृत्यु को प्राप्त होते हैं
मेधा-बल	:	(पु.),	बुद्धि का बल
मेधावी	:	(वि.),	बुद्धिमान

य

यजमान	:	(पु.),	यज्ञ करने वाला
यथेच्छ	:	(वि.),	जितना चाहिए, इच्छा के अनुकूल
ययाति	:	(पु.),	प्राचीन समय का एक राजा जिसने अपने पुत्र की जवानी लेकर अपना बुढ़ापा उसे दे दिया था
यातनाप्रद	:	(वि.),	कष्ट देने वाला

र

रंचमात्र	:	(स्त्री.),	तनिक भी, ज़रा भी
रक्तिम	:	(वि.),	लाल

रजत तार	:	(पु.),	चाँदी का पतला तार (सफ़ेद बाल)
रणनीति	:	(स्त्री.),	कार्यक्रम, योजना
रत्नाकर	:	(पु.),	रत्नों की खान (समुद्र)
रश्मि	:	(स्त्री.),	किरण
राजिवलोचन	:	(पु.),	कमल के समान नयनों वाले, राजीव लोचन
रास न आना	:	(मु.),	पसंद न आना, अनुकूल न होना
रिक्तता	:	(स्त्री.),	खालीपन
रूढ़ि	:	(स्त्री.),	पुरानी प्रथा
रोमांचक	:	(पु.),	रोमांच उत्पन्न करने वाला

ल

लक्ष्य	:	(पु.),	उद्देश्य
लहू पी-पीकर	:	(मु.),	अत्यधिक कष्ट सहकर

व

वंचना	:	(स्त्री.),	धूर्तता
वराहमिहिर	:	(पु.),	ईसा की पाँचवीं सदी के ज्योतिषी। पंच सिद्धांतिका, बृहत्संहिता, बृहज्जातक आदि इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं
वर्तुलाकार	:	(पु.),	गोलाकार
वह्नि-बाण	:	(पु.),	अग्नि बाण
विकल्प	:	(पु.),	के बदले, स्थानापन्न
विकार	:	(स्त्री.),	बुराई, दोष
विकृति	:	(स्त्री.),	दोष
विचलित	:	(वि.),	बेचैन
विच्छिन्न	:	(वि.),	अलग करना
विधाता	:	(पु.),	ईश्वर

विधि-निषेध	:	(स्त्री.),	करने-न करने के नियम
विनोद	:	(पु.),	हँसी-मज़ाक
विपथ होना	:	(मु.),	राह से भटकना
विभा	:	(स्त्री.),	प्रकाश
विमलाभ कांति	:	(स्त्री.),	पवित्र प्रकाश
विमाता	:	(स्त्री.),	सौतेली माँ
विरल	:	(वि.),	जो घना न हो
विराट	:	(पु.),	विशाल, बड़ा
विलक्षण	:	(वि.),	अद्भुत
विलास	:	(पु.),	सुखोपभोग, मौज-मस्ती
विलुप्त	:	(वि.),	जिसका लोप हो गया है, अदृश्य
विवेक	:	(पु.),	भले-बुरे की पहचान करने की शक्ति, ज्ञान
विश्वासघात	:	(पु.),	विश्वास में धोखा
विषय-वासना	:	(स्त्री.),	भोग विलास, ऐंद्रिक सुख-भोग
विषाद	:	(पु.),	उदासी, दुःख
विस्मित	:	(पु.),	चकित
विहंगम दृष्टि	:	(स्त्री.),	पूरा-पूरा देखना, एक सरसरी निगाह
विहग	:	(पु.),	पक्षी
विहान	:	(पु.),	प्रभात, सवेरा
वीक-एंड	:	(पु.),	साप्ताहिक अवकाश का अंतिम दिन
वेधशाला	:	(स्त्री.),	ग्रह-नक्षत्र के अध्ययन के लिए प्रयोगशाला
व्यथा	:	(स्त्री.),	दर्द, कष्ट
व्ययसाध्य	:	(पु.),	खर्चीला

श

शंकित हृदय	:	(पु.),	संदेह से भरा मन
शंकु	:	(पु.),	भाले की नोंक जैसी आकृति

शक वर्ष	:	(पु.),	शक संवत् का आरंभ 78 ई. को माना जाता है। इसलिए शक वर्ष में 78 जोड़ने पर ईसवी सन का वर्ष प्राप्त होता है
शतगुणोत्तर	:	(पु.),	क्रमशः सौ गुना अधिक
शतदल	:	(पु.),	कमल
शिरोधार्य	:	(स्त्री.),	स्वीकार्य
शूल	:	(पु.),	काँटा

श्र

शृंखला	:	(स्त्री.),	बंधन, ज़ंजीर, कड़ियाँ
श्रुति-स्मृति ग्रंथ	:	(पु.),	वेद और धर्मशास्त्र

स

संकीर्णता	:	(स्त्री.),	क्षुद्रता, ओछापन, तंगदिली
संख्या-संज्ञाएँ	:	(स्त्री.),	संख्याओं के नाम
संचय	:	(पु.),	जमा करना
संपन्नता	:	(स्त्री.),	भरा-पूरा होना, समृद्धि
सँपोला	:	(पु.),	साँप का बच्चा
संप्रभुता	:	(स्त्री.),	सर्वसत्ता धारण का भाव (सोवरेंटी)
संबल	:	(पु.),	सहारा
संभ्रांत	:	(पु.),	कुलीन, अभिजात
संयोग	:	(पु.),	इत्तिफ़ाक, आकस्मिकता
संरक्षण	:	(पु.),	हिफाज़त, रक्षा करने की क्रिया
संवेदना	:	(स्त्री.),	सहानुभूति, दुख को महसूस करने की भावना
संशय	:	(पु.),	संदेह
संस्कार	:	(स्त्री.),	परिष्कार, शुद्धि
संहारक	:	(पु.),	नाश करनेवाला

संचर-अचर	:	(पु.),	चेतन और जड़
सठिया जाना	:	(मु.),	बुढ़ापे के कारण मानसिक और शारीरिक रूप से कमज़ोर होना
सतत	:	(पु.),	निरंतर
सतही	:	(वि.),	ऊपरी
सत्य प्राण	:	(पु.),	जिसके प्राणों में सत्य भरा हो, सत्य स्वरूप
सत्य संकल्प	:	(पु.),	दृढ़ निश्चय
सद्वृत्ति	:	(स्त्री.),	सदाचार, अच्छाई की ओर जाने की प्रवृत्ति
सन्निहित	:	(वि.),	मिला होना
समरसता	:	(स्त्री.),	मेल-मिलाप की एकरसता
समानधर्मी	:	(पु.),	अपने ही जैसा
समुन्नत	:	(वि.),	पूर्ण रूप से उन्नत
सरफ़रोशी	:	(स्त्री.),	आत्म बलिदान, सिर बेचने की इच्छा
सरसिज	:	(पु.),	कमल
सर्वांग	:	(पु.),	सारा अंग, पूरा भाग
सर्वेक्षण	:	(पु.),	पूरी जाँच-पड़ताल के साथ निरीक्षण करना
सविशेष	:	(वि.),	विशेष रूप से, खास
सस्मित	:	(वि.),	मुसकान से भरा हुआ
सहज	:	(वि.),	स्वाभाविक
सहधर्मिणी	:	(स्त्री.),	गृहस्थ धर्म में साथ देने वाली, धर्मपत्नी
सहस	:	(स्त्री.),	सहस्र, हजार
सहिष्णु	:	(स्त्री.),	सहनशील
साईं	:	(पु.),	स्वामी
साध्वी	:	(स्त्री.),	साधु स्वभाव की स्त्री
साबुत	:	(वि.),	जो कटा-फटा न हो
सामर्थ्य	:	(स्त्री.),	क्षमता, शक्ति
सिनिवाली	:	(स्त्री.),	वैदिक काल की एक देवी, कृषि की देवी, एक नदी, सरस्वती नदी

सियरे	:	(वि.),	शीतल, शांत
सिरकी	:	(स्त्री.),	सींक
सिलसिला	:	(पु.),	क्रम, कड़ी
सुधा	:	(स्त्री.),	अमृत
सुधि लेइ	:	(मु.),	खोज-खबर लो, सँवारो
सुलह	:	(स्त्री.),	समझौता
सूत्रधारिणी	:	(स्त्री.),	संचालन करने वाली
सूत्रबद्ध	:	(स्त्री.),	सूत्र रूप में कहा हुआ, संकेत अक्षरों द्वारा व्यक्त किया हुआ
सूप	:	(पु.),	अनाज साफ़ करने का पात्र, छाज
सृष्टि	:	(स्त्री.),	जगत की उत्पत्ति
सोम	:	(पु.),	चंद्रमा
स्वच्छंद	:	(पु.),	अपनी इच्छानुसार
स्वच्छंद प्रकृति	:	(स्त्री.),	मनमाना काम करने का स्वभाव
स्वयंभू	:	(पु.),	स्वयं पैदा हुआ
स्वात्म बल-विज्ञ	:	(पु.),	अपनी शक्ति पहचानने वाला

ह

हताश	:	(वि.),	निराश
हतोत्साहित	:	(स्त्री.),	जिसमें उत्साह न रहा हो
हथियार डाल देना	:	(मु.),	हार मान लेना
हवाई किले बनाना	:	(मु.),	कल्पनाओं में घूमना, खयाली पुलाव पकाना
हादसा	:	(पु.),	दुर्घटना
हिमावृत	:	(पु.),	बर्फ से घिरा हुआ
हिसाब बनाना	:	(स्त्री.),	योजना बनाना
हेय	:	(वि.),	निम्न, त्याज्य

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।